# जिनपूजा

ISBN 81-7628-018-6

**मैत्री समूह**
के सौजन्य से प्रकाशित

**23वां संस्करण : मई 2023**
**2100 प्रतियां**

**मूल्य : 60- रुपये**

**प्राप्ति स्थान–**

- **मैत्री समूह, पोस्ट बॉक्स नं.-15, विदिशा, मध्यप्रदेश-464001**
  **फोन : 7694005092, 9425424984**

**Place online order : Maitreesamooh.com/store**
**Website : www.maitreesamooh.com**
**E-mail : samooh.maitree@gmail.com**

**मुद्रक–**
**के.आर. प्रिंटर्स, दिल्ली**
**फोन : 9891243168, 8287626311**
**E-mail: bookmanprinter@gmail.com**

# अनुक्रम

# प्रकाशकीय

जीवन का वास्तविक सुख आन्तरिक शान्ति में है और आन्तरिक-शान्ति भावनाओं की निर्मलता में है। जो जितना विकार-मुक्त रहता है उतना ही दुःख से मुक्त रहता है, उतना ही सही मायने में धार्मिक होता है। निर्मल-मन का आचरण ही सच्चा धर्म है।

जैन धर्म में पूजा-भक्ति के सभी धार्मिक अनुष्ठान आत्मा की पवित्रता के लिए आयोजित किए गए हैं। जब व्यक्ति वीतराग-भगवान के समीप पहुँचता है तो अनायास ही उसका मन हर्ष-विभोर से भरकर नाच उठता है। वह अपने गद्गद् कंठ से भावों को शब्दों में गूँथकर अपनी श्रद्धा को अभिव्यक्त करता है। भगवान के गीत गाता है और स्वयं को विकारों से मुक्त करने के लिए मन-ही-मन संकल्पित भी होता है।

वह भगवान से प्रार्थना करता है कि—

**इन्द्रादिक गणपति थके, कर विनती भगवान।**
**अपनो विरद निहारकैं कीजे आप समान॥**

यही उसकी पूजा-भक्ति का उद्देश्य है, यही उसकी सहज उपलब्धि भी है।

मुनि श्री क्षमासागरजी महाराज एक सरल और सुलझे हुए संत थे। उन्हें भावों की निर्मलता, सरलता और भीगापन प्रिय था। उनकी सोच थी कि व्यक्ति अपने सभी धार्मिक अनुष्ठान सहज सरल मन से आनन्दित होकर करे; आडम्बर और दिखावे से मुक्त रहकर विवेकपूर्वक करे।

इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए उनकी प्रेरणा से यह लघु-पुस्तिका इस रूप में प्रस्तुत करने का विनम्र प्रयास हम कर रहे हैं।

हमें विश्वास है कि जिन-पूजन/दर्शन के तर्कसंगत, वैज्ञानिक और भावात्मक स्वरूप से समन्वित यह पुस्तिका हमारी युवा पीढ़ी को समाधान देगी। हम सभी के मन को निर्मल करेगी और आसपास के वातावरण को सुरभित करेगी।

**– अनिल जैन**

सितम्बर, 2019

## मुनिश्री क्षमासागर जी महाराज

**''अभी मुझे और, धीमे कदम रखना है,**
**अभी तो चलने की, आवाज आती है।''**

अपनी साधना-यात्रा में ऐसा सूक्ष्म आत्मालोचन करने वाले संत-कवि क्षमासागर जी अपनी अनुभूतियों की अभिव्यक्ति में, अपनी सूक्ष्म टिप्पणियों में ऐसा कह जाते हैं कि पाठक भाव विभोर होते न होते विचारोद्वेलित हो उठता है। अत्यन्त कोमलता के साथ वे मनुष्य की सांसारिकता को दर्पण के सामने सरका देते हैं। पाठक बिम्ब-प्रतिबिम्ब में स्वयं को पाकर छवि पर रीझता हुआ विचलित हो उठता है।

सिंघई परिवार में जन्मे वीरेन्द्र कुमार ने सागर विश्वविद्यालय से भूगर्भ विज्ञान में एम.टेक. की उपाधि प्राप्त कर, तपोनिष्ठ आचार्य श्री विद्यासागर के आध्यात्मिक आलोक में, अपनी युवावस्था में गृह त्याग कर, दीक्षा अंगीकार कर ली थी। वीरेन्द्र कुमार ने नया नाम पाया था, क्षमासागर। जीवन में न कहीं निराशा थी, न हताशा। न कहीं कोई असफलता, न कोई विरक्ति प्रेरक कटु प्रसंग। स्वेच्छा और स्वप्रेरणा से आत्मकल्याण की ओर, आप अपने गुरू के आध्यात्मिक प्रभाव में प्रवृत्त हुए थे।

वीतराग मुनि के जीवन और चर्या ने उन्हें ऐसे प्रभावृत्त से मंडित कर दिया कि उनका प्रथम श्रेणी का कवि-व्यक्तित्व, दूसरी पंक्ति में कहीं बैठा मिलता है। कविता का संसार उनकी प्राथमिकता नहीं है, पर उनकी प्रतिभा में कविता ऐसी समाई है कि वह

अप्राथमिक बन जाने पर भी पाठक को भाव विभोर करती हुई, उससे ऐसा संबंध बना लेती है कि वह उससे बंध जाता है। अन्तःकरण को विस्तार देते हुए, उनकी कविता और उनका लेखन, पाठक के मन का परिष्कार करते हैं।

मुनिश्री का ज्ञान और सरलता सदैव भक्तों को अपनी जिज्ञासा एवं आकाक्षाओं के समाधान हेतु आकर्षित करता था। जीवन, जगत, आत्मा, परमात्मा और इनसे संबंधित सैकड़ों रहस्यों को लेकर उठती जिज्ञासाओं के उत्तर, मुनिश्री के मुख से सुनना, अपने आप में एक अलौकिक अनुभव था। जो किताबों से नहीं मिल पाता, जो शास्त्रों में उलझा रह जाता है, जो परम्पराओं से स्पष्ट चला आया है, जो रूढ़ियों से अतार्किक है, जो पूछने में बालोचित लगता हे, जो पूछा जाने योग्य प्रतीत नहीं होता, वह सब भी मुनिश्री के सान्निध्य में, प्रासंगिक चर्चा का विषय बन जाता था।

अद्वितीय कवि, चिन्तक एवं विज्ञानविद् मुनिश्री की मनीषा ने धर्म की वैज्ञानिकता एवं विज्ञान की धार्मिकता को एक दूसरे के निकट लाने का प्रयत्न किया है। अतः विज्ञान एवं धर्म, उनकी व्याख्याओं में एक-दूसरे के प्रतिरोधी न बनकर, परस्पर पूरक बने मिलते हैं। धर्म एवं विज्ञान के प्रति मुनिश्री की यह दृष्टि जैन एवं अजैन, समस्त बन्धुओं को समान रूप से अपनी तार्किकता के कारण, आधुनिक और अनुकूल प्रतीत होती है। मुनिश्री की, मन को छूने वाली भाषा और शैली, पाठक को मर्म तक सहज ही पहुँचा देती है। **-डा. सरोज कुमार, इंदौर**

# जिन मन्दिर

**मुनि क्षमासागर**

हमारा जीवन मन्दिर की तरह है। आत्मा की वीतराग अवस्था ही देवत्व है। हम सभी में वह देवत्व विद्यमान है। इस देवत्व को पहचान कर उसे अपने भीतर प्रकट करने के लिए हमने बाहर मंदिर बनाए हैं और उनमें अपने आदर्श वीतराग अर्हन्त और सिद्ध परमात्मा को स्थापित किया है।

हम जानते हैं और रोज देखते भी हैं कि घर तो पशु-पक्षी सभी बना लेते हैं लेकिन मन्दिर मनुष्य ही बना पाता है। मन्दिर के विज्ञान से जो लोग परिचित हैं और जो मन्दिर की कला को जानते हैं, यदि हम उनसे पूछें तो ज्ञात होगा कि मन्दिर का गुम्बज हो चाहे मन्दिर के छोटे-छोटे कलात्मक खिड़की-दरवाजे हों अथवा मन्दिर के प्रवेश द्वार पर लगे हुए विशाल घंटे हों या कि भगवान के सम्मुख समर्पित किये जाने वाले दीप, धूप और अष्ट द्रव्य हो, सबका संबंध कलात्मकता और गहरी वैज्ञानिक सूझबूझ से है।

गुम्बज से टकराकर गूंजती ॐकार ध्वनि, घंटे का धीमा-धीमा नाद, अभिषेक और पूजा के भाव-भीने स्वरों में वातावरण को पवित्र बनाने की सामर्थ्य छिपी है। सवाल यह है कि कौन मन्दिर में प्रवेश पाकर अपने आत्म-प्रवेश का द्वार खोल पाता है।

मन्दिर में विराजे भगवान की वीतराग छवि को देखकर अपने रागद्वेष के बन्धन को क्षणभर के लिए छिन्न-भिन्न कर देना और अहंकार को गलाकर अपने आत्म-स्वरूप में लीन होने के लिए स्वयं को भगवान के चरणों में समर्पित करते जाना ही जिन मन्दिर की उपलब्धि है।

❑❑

# जिनदर्शन

**मुनि क्षमासागर**

आइये जिनदर्शन के लिए मन्दिर चलें। पहले नहा धो लें। साफ-सुथरे और सादे कपड़े पहन लें। असल में पवित्रता, सादगी और सीधापन, मन्दिर जाने से पहले कुछ हद तक आ जाना चाहिए। दर्शन तभी संभव हैं। मन्दिर पहुँचने से पहले रास्ते में कोई और काम हम न करें। निष्काम होने निकले हैं, तो सब कामों से मुक्त होना जरूरी है। सारा रास्ता भगवान के दर्शन की प्यास के साथ गुजरे, उनके गीत गाते हुए गुजरे। ऐसा लगे मानो आज हम अपने किसी अत्यन्त प्रिय अभिन्न सखा से मिलने जा रहे हैं। अपना सब कुछ समर्पित करने जा रहे हैं। हाथ श्रेष्ठ चावलों से भरे हैं और हृदय गहरे समर्पण से भरा है। मन्दिर के द्वार पर पहुँच कर हम पहले पैर धो लें, मन का व्यर्थ बोझ उतारकर रख दें और अनुभव करें कि अनाहत गूँजती दिव्य ध्वनि से व्याप्त श्री भगवान के समवसरण में प्रवेश के क्षण आ गये हैं। बाहर दालान में लगे घंटे की धीमी-धीमी ध्वनि सुनकर मन शान्त पवित्र हो गया है मानो बाहर का सारा कोलाहल यहीं छूट गया है। अब तो प्राणों मे एक ही आवाज गूंज रही है—ओम् जय जय जय, नमोऽस्तु नमोऽस्तु नमोऽस्तु......

रोम-रोम आनन्द से भर उठा है। श्री भगवान को सम्मुख पाकर हम श्रद्धा से झुकते चले जा रहे हैं। जमीन से माथा टेककर हम पहला प्रणाम निवेदित करें। फिर संभलकर खड़े होकर श्री भगवान की वीतराग छवि को अपलक देखते-देखते एकतान होकर अंतस् वीणा पर जो स्वर गूँजे उन्हें ही शब्दों का रूप देते चले जाएं। वाणी से आपोआप भगवान का स्तवन फूट पड़े। हम पुनः उनके श्री चरणों में माथा टेककर अहं को विसर्जित करने के लिए दूसरा प्रणाम निवेदित करें। अपने साथ लाये चावलों से भरी अंजलि समर्पित कर दें। ये चावल प्रतीक हैं कि हमारा जीवन भी इसी तरह उज्ज्वल, अखण्ड और आवरण से रहित हो सके। हम जन्म मरण से मुक्त हो सकें। अब हम नौ बार णमोकार मंत्र का जाप करें और पुनः भगवान के चरणों में झुककर तीसरा प्रणाम निवेदित करें।

दर्शन की यह समग्र प्रक्रिया भावात्मक हो। शेष वेदिकाओं पर भी ऐसे ही तीन भावात्मक प्रणाम निवेदित करें। यथासंभव हर वेदिका पर मन-वचन-काय तीनों को प्रभुमय करते हुए उनके समान गुणों की प्राप्ति के लिए कम-से-कम एक प्रणाम जरूर निवेदित करें। मानिये, जिन-दर्शन हमारी समग्र चेतना को रूपान्तरित करने का अनोखा रसायन है। भाव-दशा को निर्मल बनाने का कीमिया है।

❑❑

# जिनपूजा

**मुनि क्षमासागर**

अभिषेक और जिनपूजा जिनत्व के अत्यंत समीप आने का उपक्रम है। जिनालय मानो एक आध्यत्मिक प्रयोगशाला है जहां जिनबिंब के सम्मुख जाकर हम अभिषेक और पूजन के द्वारा स्वयं को निर्मल बनाने का प्रयोग (Practical) करते हैं। अभिषेक को पूजा का एक अंग माना गया है। अभिषेक पूर्वक ही पूजा संपन्न होती है। प्रासुक जल की धारा जिनबिंब के ऊपर इस तरह प्रवाहित करना जिससे कि जिनबिंब पूरी तरह अभिसिञ्चित हो सके—यह अभिषेक कहलाता है।

जैनाचार्यों ने चार तरह के अभिषेक का उल्लेख किया है—जन्माभिषेक, राज्याभिषेक, दीक्षाभिषेक, चतुर्थाभिषेक या प्रतिमाभिषेक। तीर्थंकर बालक को सुमेरूपर्वत पर स्थित पाण्डुकशिला पर ले जाकर जो क्षीरसागर के जल से अभिसिञ्चित किया जाता है वह जन्माभिषेक कहलाता है। तीर्थंकर कुमार का राजतिलक के अवसर पर जो अभिषेक किया जाता है वह राज्याभिषेक कहलाता है। तीर्थंकर का जिनदीक्षा लेने से पूर्व जो अभिषेक किया जाता है वह दीक्षाभिषेक कहलाता है। विधि-विधान पूर्वक प्रतिष्ठित किए गए जिनबिंब पर जो अभिषेक किया जाता है वह चतुर्थाभिषेक या प्रतिमाभिषेक कहलाता है। अतः नित्य-पूजन से पूर्व जो जिनबिंब का अभिषेक होता है वह चतुर्थाभिषेक या प्रतिमाभिषेक है।

अभिषेक की परंपरा अनादि-निधन है। चतुर्निकाय के देव अष्टाह्निक पर्व में नन्दीश्वर द्वीप में जाकर चारों दिशाओं के अकृत्रिम चैत्यालयों में क्रमशः दो-दो प्रहर करके चौबीसों घंटे भगवान का अभिषेक एवं पूजन करते हैं। यह बात बड़ी महत्वपूर्ण है कि सौधर्म आदि इन्द्र और सभी देवगण विदेह क्षेत्र में सदा विद्यमान रहने वाले तीर्थंकरों के कल्याणक एवं साक्षात् दर्शन का सौभाग्य प्राप्त होने पर भी अकृत्रिम चैत्यालयों में भक्तिभाव से अभिषेक करने जाते हैं और स्वयं को धन्य मानते हैं।

असल में, अभिषेक के दौरान जिनबिंब के अत्यंत निकट आने और भाव-विभोर होकर भगवान का स्पर्श करने का सुखद अवसर प्राप्त होता है जिससे भावों में बड़ी निर्मलता आती है मन गद्गद् हो जाता है और जीवन की सार्थकता मालूम पड़ती है। अभिषेक का उद्देश्य बताते हुए लिखा गया है कि हे भगवन्! आप सहज ही परम पवित्र हैं। आपकी पवित्रता के लिए मैंने अभिषेक नहीं किया। मैंने तो स्वयं को रागद्वेष रूप मलिनता से मुक्त करने के लिए आपके पवित्र बिंब पर जलधारा प्रवाहित की है और क्षण भर को समस्त पापाचरण छोड़ करके मानो आपका साक्षात् स्पर्श करने का पुण्य अर्जित किया है। इस तरह अभिषेक आत्म-निर्मलता के लिए किया गया एक अत्यंत महत्वपूर्ण अनुष्ठान है। अभिषेक के दौरान उच्चरित मंत्रों से भावित और जिनबिंब के स्पर्श से पवित्र हुआ सुगंधित जल गंधोदक कहलाता है जिसे अपने संचित पापों का क्षय करने की उत्तम भावना से नेत्र और ललाट पर धारण किया जाता है।

जिनपूजा, गहन आत्मीयता से भरकर अपने श्रध्देय के प्रति आदर-सम्मान प्रकट करने का एक सुखद अवसर (auspicious occasion) है। वह काम, क्रोध, लोभ आदि विकारी भावों से चेतना को मुक्त करने की एक प्रक्रिया (Process) है। वह त्याग और संयम के सूप द्वारा व्यर्थ पदाथो ं को फटकारकर अलग करने और सारभूत (relevent) तत्व को ग्रहण करने का कीमिया (अल्केमी) है। पूजा हमारी आंतरिक पवित्रता को उद्घाटित (exploration) करने का अनुष्ठान है।

पूजा की प्रक्रिया दो तरह से संपन्न होती है। द्रव्य और भाव रूप से। जल, चंदन आदि पवित्र अष्ट द्रव्य द्वारा जिनेन्द्र भगवान की भक्ति करना द्रव्यपूजा कहलाती है और मन की अशुद्ध प्रवृत्ति को रोककर जिनेन्द्र भगवान का गुणगान करना भावपूजा है। पूजा करते समय ही नहीं बल्कि पूजा के उपरांत भी दिनभर मन, वाणी और कर्म में पवित्रता बनी रहे यही पूजा का उद्देश्य है। पूजा को वैयावृत्त्य या सेवा भी कहा गया है। भगवान के समान गुणों को प्राप्त करने की भावना रखना ही भगवान की सच्ची सेवा है अतः पूजा के दौरान भगवान के समान बनने की भावना रखनी चाहिए। श्रावक स्वयं भोजन करने से पूर्व पूजा के योग्य सामग्री तैयार करके जिनबिंब के सम्मुख अर्पित करता है, इसलिए पूजा को श्रावक के 'अतिथि संविभाग' नामक व्रत के अंतर्गत रखा गया है।

पूजा करते समय हम पांच-पापों से मुक्त होकर पंचपरमेष्ठी के गुणगान में लीन हो जाते हैं इसलिए पूजा को श्रावक के 'सामायिक'

नामक शिक्षाव्रत में भी शामिल किया गया है। पूजा करते समय हम एकाग्र होकर पंचपरमेष्ठी वाचक विभिन्न पदों (मंत्रों) के माध्यम से भगवान जिनेन्द्र के स्वरूप का स्मरण करते हैं इसलिए पूजा एक तरह का पदस्थ ध्यान भी है। पूजा के दौरान चूंकि वीतरागी देवशास्त्र गुरु के स्वरूप का चिंतवन और अपना आत्मावलोकन दोनों साथ-साथ चलते रहते हैं अतः पूजा को स्वाध्याय भी कहा गया है। इस तरह पूजा आत्म-विकास में सहयोगी अनेक गुणों का समन्वित रूप है। अधिक समय तक एकाग्र होकर मंत्र का जाप करना कठिन है लेकिन भाव-भक्ति से तन्मय होकर जिनबिंब के सम्मुख दीर्घ-काल तक पूजा करना आसान है इसलिए सद्‌गृहस्थ को अशुभ कार्यों से बचाकर अधिक समय तक धर्मध्यान में लगाए रखने में जिनपूजा अत्यंत उपकारी है।

पूजा के दौरान जिनबिंब के सम्मुख अष्ट-द्रव्य समर्पित किए जाते हैं। सर्वप्रथम भरत चक्रवर्ती ने भगवान ऋषभदेव की पूजा अष्ट-द्रव्य से की थी—ऐसा उल्लेख मिलता है। भगवान का गुणगान करते हुए सजगतापूर्वक क्रम-क्रम से एक-एक द्रव्य समर्पित करने से मन, वाणी और शरीर तीनों को शुभ कार्य में व्यस्त रखना आसान हो जाता है। अतः अष्ट द्रव्य का महत्व स्वतः सिद्ध है। अष्ट कर्म से मुक्त होने की पवित्र भावना से अष्ट द्रव्य अर्पित किए जाते हैं।

सर्वप्रथम हम भगवान के श्रीचरणों में जल अर्पित करते हैं। जल को ज्ञान का प्रतीक माना गया है। सम्यग्ज्ञान के अभाव में जीव संसार में जन्म-मरण की पीड़ा पाता है। अतः जल अर्पित करना

सम्यग्ज्ञान की प्राप्ति और जन्म-मरण की पीड़ा से मुक्त होने की भावना का सूचक है। जल से एक व्यवहारिक संदेश यह भी मिलता है कि हम सभी जीवों के साथ मिलजुलकर रहना सीखें। जल की तरह तरल, निर्मल और गतिशील बनें।

जल के उपरांत चंदन अर्पित करने का अवसर आता है। चंदन शीतलता का प्रतीक है। शीतलनाथ भगवान की स्तुति करते हुए आचार्य समंतभद्र स्वामी कहते हैं कि हे भगवन्! संसार में चंदन, चाँदनी, गंगा का शीतल जल, मणिमय हार आदि शीतलता प्रदान करने वाले माने गए हैं पर वास्तव में आपके निर्दोष पापरहित वचन ही शीतल हैं जो जीव को संसार के संताप से सदा के लिए मुक्त करनेवाले हैं। अतः चंदन अर्पित करने का पवित्र उद्देश्य यही होना चाहिए कि हमें भगवान की वाणी का समागम मिले जिससे हमारी श्रद्धा की आंख खुले, हमें आत्मदर्शन (स्वसंवेदन) हो और हम दर्शनावरणीय-कर्म को नष्ट करके संसार परिभ्रमण के संताप को शान्त कर सकें। चंदन चढ़ाने से एक व्यवहारिक संदेश यह भी मिलता है कि हम शोक-संतप्त दुःखी जीवों को अपने तन-मन और वाणी के द्वारा शीतलता पहुंचाने का प्रयत्न करें। सभी के प्रति हार्दिक और सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार बनाए रखें।

अब क्रम आता है अक्षत चढ़ाने का। अक्षत को अखंडता (indivisability) का प्रतीक माना गया है। हम अक्षत अर्पित करके अखंड या अव्याबाध-सुख पाने की भावना व्यक्त करते हैं। यह अव्याबाध-सुख हमें वेदनीय कर्म के अभाव में प्राप्त हो सकता है इसलिए अक्षत अर्पित करने का मंगल उद्देश्य वेदनीय कर्म जनित

सांसारिक सुख-दुःख में समता रखते हुए जीवन जीना भी है। सामान्यतः धुले हुए स्वच्छ और अखंड चावलों में अक्षत की कल्पना करके हम उन्हें भगवान के सम्मुख चढ़ाते हैं। अतः चावल की स्वच्छता या उज्ज्वलता भी हमें एक व्यावहारिक संदेश देती है कि हम अपने जीवन को साफ-सुथरा और उज्ज्वल बनाएं। सुख-दुःख के अवसर आने पर मन को अहंकार और संक्लेश से मलिन न होनें दें।

अक्षत के उपरांत पुष्प अर्पित किए जाते हैं। पुष्प को काम-वासना का प्रतीक माना जाता है। काम-वासना मोहजनित है। अतः पुष्प समर्पित करके हम मोहजनित काम-वासना को शांत करने और अपने शील या स्वभाव को पाने की भावना व्यक्त करते हैं। पुष्प अर्पित करते समय एक व्यावहारिक संदेश यह भी ले सकते हैं कि हमारा जीवन फूलों की तरह कोमल, सुंदर और सुगंधित बने। फूलों का जीवन अत्यंत अल्प होता है फिर उन्हें मुरझाना और टूटकर गिर जाना होता है। इसी तरह हमारा जीवन भी थोड़ा है यदि हम इसका सदुपयोग नहीं कर पाएंगे तो एक दिन यह समाप्त हो जाएगा। जीवन की सार्थकता यही है कि हम जीवन को आत्म-कल्याण और लोक-कल्याण के कार्य में लगाएं।

अब नैवेद्य अर्पित करने का क्रम आता है। निर्दोष भोज्य-सामग्री को नैवेद्य कहते हैं। इसे चरु भी कहते हैं। भूख-प्यास की वेदना को शांत करने और आयु-प्राण को संबल देने में भोज्य-सामग्री मदद देती है। जीव जब तक किसी भी भव की आयु धारण करता रहेगा तब तक भूख-प्यास आदि की वेदना से मुक्त नहीं हो सकता। अतः

हम नैवेद्य अर्पित करते समय आयु-कर्म से मुक्त होने और भूख (क्षुधा) की वेदना मिटाने की भावना व्यक्त करते हैं। नैवेद्य अर्पित करते समय एक व्यावहारिक संदेश यह भी लेना चाहिए कि यथाशक्ति आहार-दान देकर आहार-सामग्री के प्रति अपनी आसक्ति घटाने, सभी जीवों का उपकार करने और आत्म-तृप्ति पाने का सद्प्रयास करते रहना चाहिए। जैसे आयुकर्म के अभाव में आत्मा में अवगाहनत्व गुण प्रकट हो जाता है इसी प्रकार आहार-दान के निमित्त से प्राणिमात्र को अपने हृदय में स्थान देते हुए सभी के हृदय में अपने लिए स्थान प्राप्त किया जा सकता है।

अब दीप अर्पित करने का अवसर आता है। दीपक की ज्योति अंधकार को नष्ट करने वाली और सभी पदार्थों को प्रकाशित करने वाली है। इस ज्योति से भी सूक्ष्म केवलज्ञान रूपी परम ज्योति है जो सभी आत्माओं में व्याप्त अज्ञान के सघन अंधकार को हटाने वाली और शरीरातीत शुद्ध आत्मस्वरूप का दर्शन कराने वाली है। अतः दीप समर्पित करते हुए हम नामकर्म के अभाव में प्रकट होने वाली शरीरातीत विशुद्ध परमात्म-ज्योति को प्राप्त करने की मंगल-भावना व्यक्त करें। दीपक से एक व्यावहारिक संदेश यह भी लिया जा सकता है कि हम जहां भी रहें वहां अपने आसपास के परिवेश को सदाचार और सद्ज्ञान से आलोकित करते रहें। हमारे शरीर रूपी दीपक में सभी जीवों के प्रति स्नेह (तेल) सदा बना रहे और श्रद्धा-भक्ति व विवेक की बाती निरंतर जलती रहे।

अब धूप अर्पित करने का क्रम आता है। धूप की यह विशेषता

है कि वह स्वयं जलती जाती है लेकिन आसपास के समूचे वातावरण में फैलकर उसे सुगंधित बना देती है। धूप की खुशबू गरीब-अमीर, छोटे-बड़े आदि का भेदभाव नहीं करती और समान-भाव से सभी को लाभान्वित करती है। अतः धूप अर्पित करते हुए हम गोत्र कर्म के अभाव में प्रकट होने वाले आत्मा के स्वाभाविक अगुरुलघुत्व गुण को प्राप्त करने की भावना व्यक्त करें। धूप से एक व्यावहारिक संदेश यह भी लेने का प्रयत्न करें कि अपने जीवन में किसी के प्रति भेदभाव नहीं रखेंगे और सभी से मैत्रीपूर्ण व्यवहार करेंगे।

अब फल समर्पित करने का क्रम आता है। हम संसार में जो भी भला-बुरा कार्य करते हैं तो उसका भला-बुरा फल भी हम पाते हैं। फल की प्राप्ति में हमारे संचित कर्म या संस्कार बाधक भी बनते हैं। ऐसी स्थिति में हम फल समर्पित करते हुए यह भावना रखें कि हमारे बाधक कर्मों (अन्तराय कर्म) का अभाव हो ताकि हम अपनी अनंत सामर्थ्य या अनंत बल को प्रकट करके मनुष्य जीवन का श्रेष्ठतम फल मोक्षपद पा सकें। फल चढ़ाते समय यह व्यावहारिक संदेश भी मिलता है कि हम जो भी करें अच्छा करें और अच्छी भावना से करें। शुभ-अशुभ कर्मों के फलस्वरूप प्राप्त होने वाले सुख-दुःख, लाभ-हानि जय-पराजय में साम्य-भाव रखें।

अंत में अर्घ समर्पित करने का अवसर आता है। अर्घ वास्तव में अष्ट-द्रव्य से प्रथक् नहीं है वह अष्ट-द्रव्यों का समन्वित रूप है। अर्घ्य के मायने है मूल्यवान। अष्ट द्रव्यों को जब हम शुभ-भावों के रस में मिलाकर अर्घ्य बनाते हैं तब हम सचमुच मूल्यवान हो जाता

है। अर्घ्य समर्पित करते हुए हम यह भावना व्यक्त करते हैं कि हमें आत्मा की परम विशुद्ध और अमूल्य परमात्म-अवस्था प्राप्त हो। अर्घ्य चढ़ाते समय एक व्यावहारिक संदेश यह भी ले सकते हैं कि मनुष्य जीवन सबसे मूल्यवान है हमें इसका सदुपयोग करना चाहिए। स्वयं आत्म-निर्भर रहकर सबकी मदद के लिए सदा तत्पर रहना चाहिए।

इस तरह पूजा के प्रत्येक द्रव्य से मिलने वाला संदेश हमारे जीवन को श्रेष्ठ और परिपूर्ण बनाने में सक्षम है। पूजा की समाप्ति पर अपनी कमियों या गलतियों के लिए अत्यंत विनम्रभाव से जो क्षमायाचनापूर्वक भगवान के प्रति अपनी श्रद्धाभक्ति प्रगट की जाती है उसे विसर्जन, क्षमायाचना या समापन कहते हैं। समापन की क्रिया हमें अत्यंत सहज, सरल और शांत भाव से करनी चाहिए। समापन की प्रक्रिया से हमें यह संदेश मिलता है कि हम अपने सभी कार्य विनयभाव से करें। कर्त्तव्यपने व अहंकार के भाव से बचें और सदा अपनी कमियों व भूलों के प्रति सजग रहकर उन्हें सुधारने का प्रयत्न करें।

वर्तमान समय में पूजा की प्रक्रिया, पूजा के दौरान समर्पित की जाने वाली सचित्त-अचित्त पूजन-सामग्री, अभिषेक या प्रक्षाल की क्रिया, आह्वान, स्थापन, विसर्जन या समापन आदि क्रियाओं में विविधता देखने में आती है। इस विविधता को देखकर हम विचलित न हों। अहिंसा और वीतरागता को प्रमुखता देते हुए कषायों की मंदता, कर्मों की निर्जरा और रत्नत्रय की प्राप्ति की भावना से प्रतिदिन श्रद्धापूर्वक अभिषेक और पूजा करने का सम्यक्-पुरुषार्थ करें और अपना जीवन सफल बनाएं।

# अभिषेक और पूजा

## एक वैज्ञानिक छानबीन

विश्व-प्रसिद्ध वैज्ञानिक अल्बर्ट आइन्सटाइन के अनुसार ''विज्ञान धर्म के बिना पंगु है और धर्म विज्ञान के बिना अन्धा है।'' सौभाग्य से जैनधर्म के अनेक सिद्धांत भी विज्ञान की कसौटी पर कसे गये हैं और सदैव खरे उतरे हैं।

आज का युवा जो विज्ञान एवं विलासिता के भौतिक वातावरण में बड़ा हुआ है, अन्धानुकरण न करके यथार्थ को जानने-मानने के लिए उत्सुक है। हर बात में वह प्रश्न एवं तर्क करता है। यहां युवा से मेरा अभिप्राय उस पूरे वर्ग से है जो स्वयं को नई पीढ़ी कहता है। इस समूह ने समय-समय पर कई सार्थक प्रश्न उठाए हैं। जैसे पूजा क्यों? अभिषेक क्यों? पूजा मंदिर में ही क्यों? घर में क्यों नहीं? मन्दिरों के विशाल होने पर भी मूल गंभारे गर्भगृह इतने छोटे क्यों? मूल गंभारे में खिड़की क्यों नहीं होती? मूल गंभारे में अंधेरा क्यों बनाये रखा जाता है?

इन प्रश्नों का वैज्ञानिक ढंग से उत्तर देने का प्रयास किया है श्री पराशक्ति महिला महाविद्यालय, कूरटालम, तमिलनाडू की शोध छात्राओं ने। इन दिनों मद्रास में आयोजित एक प्रदर्शनी में वैज्ञानिक तथ्यों के आधार पर यह सिद्ध करने का प्रयास किया गया है कि धर्म में भी विज्ञान उतना ही सक्रिय है जितना किसी और क्षेत्र में।

इन छात्राओं ने यह सिद्ध कर दिखाया है कि मंदिर की सारी क्रियाओं के पीछे वैज्ञानिक तथ्य है। हर क्रिया का तन, मन और वचन पर स्पष्ट और सीधा असर होता है। अपनी खोज से उन्होंने यह तय किया है कि हमारे मंदिर शिक्षा, विज्ञान, कला, स्थापत्य एवं आकार-अभियांत्रिकी के केन्द्र हैं, परम शांति एवं चरम आनन्द के अचूक स्रोत हैं।

आगम में गर्भगृह के निर्माण एवं आकार के विविध और अनेक परिणाम तथा शैलियां बतायी हैं। गर्भगृह में विराजित जिनेश्वर प्रभु की प्रतिमा एवं गर्भगृह के आकार एवं परिमाण में गहरा संबंध है। मूल गंभारे गर्भगृह एवं मूल प्रतिमा के आकार अनुपात के विशेष संबंध से मूल गंभारे की हवा का एक-एक अणु अधिकतम घूर्ण या आवर्तिता से कंपित होता है। जैसे ही गंभारे के बाहर मन्त्रोच्चार किया जाता है, गंभारे के वायुकण/ एयर मोलीक्यूल अधिकतम आवर्तिता/ मेक्जीमम एम्प्लीट्यूड से कंपित हो उठते हैं, जिससे इंटेंस साउंड/तीव्र नाद पैदा होता है। इस तथ्य को सिद्ध करने के लिए मूल गंभारे के बाहर रबर के एक टुकड़े पर चोट खाये कांपते ट्यूनिंग फोर्क को रखने पर स्वतः ही गंभारे से ॐ शब्द का सुमधुर नाद गहनता से उत्पन्न होता है।

यह सिद्ध करने के लिए कि मूल गंभारे में ऋण आयनों की अधिकता होती है आसवन विधि/कंडेन्सर मेथड प्रयोग में ली जाती है। इस विधि के द्वारा शोध-छात्राओं ने यह सिद्ध किया है कि मूल गंभारा ऊर्जा का अनवरत स्रोत होता है। इन शोध-छात्राओं ने एक

मूर्ति की अभिषेक के पहले एवं अभिषेक के बाद विद्युत प्रतिरोधकता रेजिस्टेंस एवं विद्युत चालक क्षमता कंडेन्सिटी मापी। उन्हें लगा कि अभिषेक के पहले प्रतिरोध अधिक होता है और अभिषेक के बाद प्रतिरोध कम हो जाता है।

अभिषेक पूजा या मन्त्रोच्चार से ऋण आयन अर्थात् निगेटिव आयन में वृद्धि होती है। निगेटिव आयन का आवेश प्राणदायक वायु ऑक्सीजन को हीमोग्लोबिन से मिलाने में सहायक होता है। हीमोग्लोबिन मानव रुधिर का वह तत्व है जिसमें ऑक्सीजन घुलकर शरीर के प्रत्येक भाग में पहुंचती है। यह सिद्ध किया जा चुका है कि जहां 'ऋण-आयन' नहीं होते हैं वहां मृत्यु तक हो सकती है। 'ऋण-आयनों' वाले ये स्थान स्वास्थ्यवर्द्धक होते हैं। ऋण-आयनों की अधिकता समुद्री किनारों, झरनों के करीब या पहाड़ी स्थानों पर पायी जाती है। हमारे मंदिर इसीलिए ऐसे रमणीय और सार्थक स्थानों पर स्थित हैं। आज के वातावरण में जबकि हर जगह विद्युत प्रदूषण 'इलेक्ट्रिकल पोल्यूशन' ज्यादा है, इन 'ऋण-आयनों' की कमी हरदम महसूस की जाती है, ये ही मूल्यवान 'ऋण-आयन' मूल गंभारे में विशेष प्रकार के पदार्थों द्वारा मूर्ति का अभिषेक करने पर उत्पन्न होते हैं। चन्दन आदि वातावरण में नमी बनाये रखने में सहायता करते हैं।

जैसे ही मूल गंभारे के बाहर मन्त्रोच्चार किया जाता है, मूल गंभारे में उपस्थित हवा में अधिकतम ऊर्जा के साथ कम्पन शुरू हो जाता है। मन्त्रोच्चार के पश्चात् आरती, चंवर इत्यादि का प्रयोग होता है। आरती चंवर इत्यादि से गर्भगृह की हवा, जो ऊर्जा से आवेशित होती

है, प्रार्थना करनेवालों की तरफ आती है, जिससे श्वास लेने से ऑक्सीजन को हीमोग्लोबिन में प्रविष्ट होने में मदद मिलती है। इस प्रकार इन शोध-छात्राओं ने निष्कर्ष लिए हैं कि—

1. गर्भगृह आयतन-अनुनादक/वॉल्यूम रीजोनेटर हैं अतः ॐ नाद की उत्पत्ति में सहायक है।
2. मूर्ति ऊर्जा भंडार/एनर्जी रिजर्वायर का कार्य करती है।
3. गर्भगृह की हवा, ऊर्जा के स्थानान्तरण (ट्रान्सफर ऑफ एनर्जी) में माध्यम का कार्य करती है।

यही कारण है कि मन्दिर में पूजा, अर्चना, भक्ति इत्यादि महत्वपूर्ण माने गए हैं क्योंकि मंदिर में उत्पन्न ऊर्जा मनुष्य को सुख-शांति एवं आत्मोन्नति की ओर बढ़ाती है। विशेष प्रकार से बनाये गये गर्भगृह में पूजा एवं अर्चना से आध्यात्मिक शक्ति की उत्प्रेरणा होती है। इन्हीं कारणों से गंभारे में खिड़की नहीं रखी जाती ताकि ऊर्जा सिर्फ मूल गंभारे के मुख्य दरवाजे से प्रार्थी पर सीधा प्रभाव कर सके एवं गर्भगृह में बिजली के बल्ब इत्यादि द्वारा रोशनी नहीं की जाती, क्योंकि उससे 'ऋण-आयन' समाप्त हो जाते हैं। इसी कारण मंदिर में एवं मूल गंभारे में सिर्फ घी के दीपक का प्रकाश किया जाता है।

इस तरह यह सिद्ध होता है कि हमारे पूर्वजों द्वारा निरूपित/निर्धारित विधि-विधान बहुत गहरा अर्थ रखते हैं। हमारी संस्कृति न केवल वैज्ञानिक सिद्धांतों की जन्मदात्री है, बल्कि आत्मोन्नति की अपूर्व सीढ़ी भी है। रूसी वैज्ञानिक कामेनिएव एवं अमरीकी वैज्ञानिक डॉ. रूडाल्फ किर ने बहुत से प्रयोग करके यह सिद्ध किया है कि

मंत्र में अपूर्व शक्ति है। एक रूसी वैज्ञानिक सेम्योनोव डी.किरलियान ने ऐसी हाई फ्रीक्वेन्सी फोटोग्राफी विकसित की है जिससे यह सिद्ध होता है कि मंदिर की माला एवं घर की माला में अत्यधिक फर्क होता है। 'किरलियान फोटोग्राफी' जो इन दिनों शोध-कार्य में सर्वत्र प्रयुक्त है, ''किरलियान एफेक्ट'' बताने में सहायक सिद्ध हो रही है। अगर किसी के हाथ का चित्र 'किरलियान फोटोग्राफी' से लिया जाए तो न सिर्फ हाथ का फोटो ही आएगा, साथ ही साथ हाथ के आस-पास जो किरणें हैं, उनका भी चित्र आएगा। किरलियान का कहना है कि बीमारी के आने के छह महीने पहले ही बता दिया जा सकेगा कि आदमी बीमार होने वाला है। इस प्रकार मन्त्र, पूजा व आराधना हृदय परिवर्तन की एक सम्पूर्ण प्रक्रिया है।

भारतीय संस्कृति आज के विश्व में शांति प्रदान करने वाली संस्कृति है और इसीलिए महर्षि अरविन्द को कहना पड़ा कि ''भारत भूमि केवल जमीन का टुकड़ा नहीं है, वह एक अपूर्व आत्मिक शक्ति है।''

मन्दिर, पूजा, मन्त्रोच्चार सभी आध्यात्मिक शांति एवं आत्मोत्थान के अपूर्व स्रोत हैं। अन्धानुकरण न कर यदि हम इन साधनों के गूढ़ रहस्यों को समझने की कोशिश करें तो शायद प्रभु परमेश्वर के इस विराट प्रेम-भरे जगत से बहुत पाया जा सकता है एवं जीवन को अलौकिक बनाया जा सकता है।

**प्रस्तुति–बी.टी. बजावत**

(तीर्थंकर से साभार)

# मंगलाष्टक

अर्हन्तो भगवन्त इन्द्रमहिताः सिद्धाश्च सिद्धीश्वराः,
आचार्या जिनशासनोन्नतिकराः पूज्या उपाध्यायकाः।
श्रीसिद्धान्तसुपाठकाः मुनिवराः रत्नत्रयाराधकाः,
पञ्चैते परमेष्ठिनः प्रतिदिनं कुर्वन्तु नो मङ्गलम् ॥1॥

श्रीमन्नम्रसुरासुरेन्द्रमुकुटप्रद्योत-रत्नप्रभा,
भास्वत्पादनखेन्दवः प्रवचनाम्भोधीन्दवः स्थायिनः।
ये सर्वे जिनसिद्ध-सूर्यनुगतास्ते पाठकाः साधवः
स्तुत्या योगिजनैश्च पञ्चगुरवः कुर्वन्तु नो मङ्गलम् ॥2॥

सम्यग्दर्शन-बोध वृत्तममलं रत्नत्रयं पावनं,
मुक्तिश्री नगराधिनाथ-जिनपत्युक्तोऽपवर्गप्रदः।
धर्मः सूक्तिसुधा च चैत्यमखिलं चैत्यालयं श्यालयं,
प्रोक्तं च त्रिविधं चतुर्विधममी कुर्वन्तु नो मङ्गलम् ॥3॥

नाभेयादि-जिनाधिपास्त्रिभुवनख्याताः चतुर्विंशतिः,
श्रीमन्तो भरतेश्वरप्रभृतयो ये चक्रिणो द्वादश।
ये विष्णुप्रतिविष्णु-लाङ्गलधराः सप्तोत्तरा विंशतिः,
त्रैकाल्येप्रथितास्त्रिषष्टिपुरुषाः कुर्वन्तु नो मङ्गलम् ॥4॥

ये सर्वौषधऋद्धयः सुतपसो वृद्धिंगता पंच ये,
ये चाष्टांग महानिमित्तकुशला येऽष्टैर्विधाश्चारणः।
पञ्चज्ञानधरास्त्रयोऽपि बलिनो ये बुद्धि-ऋद्धीश्वराः,
सप्तैते सकलार्चिता गणभृतः कुर्वन्तु नो मङ्गलम् ॥5॥

कैलाशे वृषभस्य निर्वृतिमही वीरस्य पावापुरे,
चम्पायां वसुपूज्य सज्जिनपतेः सम्मेदशैलेऽर्हताम्।
शेषाणामपि चोर्जयन्तशिखरे नेमीश्वरस्यार्हतो,
निर्वाणावनयः प्रसिद्धविभवाः कुर्वन्तु नो मङ्गलम् ॥6॥

सर्पो हारलता भवत्यसिलता सत्पुष्पदामायते।
सम्पद्येत रसायनं विषमपि, प्रीतिं विधत्ते रिपुः
देवायान्ति वशं प्रसन्नमनसः किं वा बहु ब्रूमहे
धर्मादेव नभोऽपि वर्षतिनगैः, कुर्वन्तु नो मङ्गलम् ॥7॥

ज्योतिर्व्यन्तर-भावनामरगृहे मेरौ कुलाद्रौ तथा,
जम्बू-शाल्मलि-चैत्यशाखिषु तथा वक्षार-रौप्याद्रिषु।
इष्वाकारगिरौ च कुण्डलनगे द्वीपे च नन्दीश्वरे,
शैले ये मनुजोत्तरे जिनगृहाः कुर्वन्तु नो मङ्गलम् ॥8॥

यो गर्भावतरोत्सवो भगवतां जन्माभिषेकोत्सवो,
यो जातः परिनिष्क्रमेण विभवो यः केवलज्ञानभाक्।
यः कैवल्यपुरप्रवेशमहिमा संभावितः स्वर्गिभिः,
कल्याणानि न तानि पञ्च सततं कुर्वन्तु नो मङ्गलम् ॥9॥

इत्थं श्री जिनमङ्गलाष्टकमिदं सौभाग्यसंपत्करम्,
कल्याणेषु महोत्सवेषु सुधियस्तीर्थङ्कराणां मुखात्।
ये शृण्वन्ति पठन्ति तैश्च सुजनैधर्मार्थकामान्विता,
लक्ष्मीराश्रियते व्यपायरहिता निर्वाणलक्ष्मीरपि ॥10॥

## दर्शन-पाठ

दर्शनं देवदेवस्य, दर्शनं पापनाशनम्।
दर्शनं स्वर्गसोपानं, दर्शनं मोक्षसाधनम् ॥1॥

दर्शनेन जिनेन्द्राणां, साधूनां वन्दनेन च।
न चिरं तिष्ठते पापं, छिद्रहस्ते यथोदकम् ॥2॥

वीतराग-मुखं दृष्ट्वा, पद्मराग-समप्रभम्।
जन्म-जन्मकृतं पापं, दर्शनेन विनश्यति ॥3॥

दर्शनं जिनसूर्यस्य, संसारध्वान्त नाशनम्।
बोधनं चित्त-पद्मस्य, समस्तार्थ-प्रकाशनम् ॥4॥

दर्शनं जिन-चन्द्रस्य, सद्धर्मामृत-वर्षणम्।
जन्म-दाहविनाशाय, वर्धनं सुख-वारिधेः ॥5॥

जीवादितत्त्व-प्रतिपादकाय, सम्यक्त्व-मुख्याष्ट-गुणार्णवाय।
प्रशान्तरूपाय दिगम्बराय, देवाधिदेवाय नमो जिनाय ॥6॥

चिदानन्दैक-रूपाय, जिनाय परमात्मने।
परमात्मप्रकाशाय, नित्यं सिद्धात्मने नमः ॥7॥

अन्यथा शरणं नास्ति, त्वमेव शरणं मम।
तस्मात्कारुण्य भावेन, रक्ष-रक्ष जिनेश्वर ॥8॥

नहि त्राता नहि त्राता, नहि त्राता जगत्त्रये।
वीतरागात्परो देवो, न भूतो न भविष्यति ॥9॥

जिने-भक्तिर्जिने-भक्तिर्जिने, भक्तिर्दिने दिने।
सदामेऽस्तु सदामेऽस्तु, सदामेऽस्तु भवे भवे ॥10॥

जिनधर्मविनिर्मुक्तो, मा भवेत्चक्रवर्त्यपि।
स्याच्चेटोऽपि दरिद्रोऽपि, जिन-धर्मानुवासितः॥11॥

जन्म-जन्मकृतं पापं, जन्म-कोटिमुपार्जितम्।
जन्म-मृत्यु-जरा-रोगं, हन्यते जिन-दर्शनात् ॥12॥

अद्याभवत्सफलता नयन-द्वयस्य,
देव त्वदीय-चरणाम्बुज-वीक्षणेन।
अद्य त्रिलोक-तिलक प्रतिभासते मे,
संसार-वारिधिरयं चुलुक-प्रमाणम् ॥13॥

•

## दर्शन-पाठ

दर्शन श्रीदेवाधिदेव का, दर्शन पाप विनाशन है।
दर्शन है सोपान स्वर्ग का, और मोक्ष का साधन है ॥1॥

श्री जिनेन्द्र के दर्शन औ, निर्ग्रन्थ साधु के वंदन से।
अधिक देर अघ नहीं रहे, जल छिद्र सहित कर में जैसे ॥2॥

वीतराग-मुख के दर्शन की, पद्मराग सम शांत-प्रभा।
जन्म-जन्म के पातक क्षण में, दर्शन से हों शांत विदा ॥3॥

दर्शन श्री जिनदेव सूर्य, संसार-तिमिर का करता नाश।
बोध-प्रदाता चित्त पद्म को, सकल अर्थ का करे प्रकाश ॥4॥

दर्शन श्री जिनेन्द्रचन्द्र का, सद्धर्मामृत बरसाता।
जन्मदाह को करे शांत, औ सुख वारिधि को विकसाता ॥5॥

सकल तत्व के प्रतिपादक, सम्यक्त्वादि गुण के सागर।
शांत दिगम्बररूप नमूँ, देवाधिदेव तुमको जिनवर ॥6॥

चिदानन्दमय एकरूप, वंदन जिनेन्द्र परमात्मा को।
हो प्रकाश परमात्म नित्य, मम नमस्कार सिद्धात्मा को ॥7॥

अन्य शरण कोई न जगत में, तुम्हीं शरण मुझको स्वामी।
करुण भाव से रक्षा करिये, हे जिनेश अन्तर्यामी ॥8॥

रक्षक नहीं शरण कोई नहिं, तीन जगत में दुखत्राता।
वीतराग प्रभु सा न देव है, हुआ न होगा सुखदाता ॥9॥

दिन-दिन पाऊँ जिनवर भक्ति, जिनवर भक्ति, जिनवर भक्ति।
सदा मिले वह सदा मिले, जब तक न मिले मुझको मुक्ति ॥10॥

नहीं चाहता जिनधर्म बिना, मैं चक्रवर्ती का होना।
नहीं अखरता जैनधर्म के, सहित दरिद्रों का होना ॥11॥

जन्म-जन्म के किये पाप औ बन्धन कोटि-कोटि भव के।
जन्म-मृत्यु औ जरा रोग, सब कट जाते जिनदर्शन से ॥12॥

आज 'युगल' दृग हुए सफल, तुम चरण-कमल से हे प्रभुवर।
हे त्रिलोक के तिलक, आज लगता भवसागर चुल्लू भर ॥13॥

●

## अभिषेक पाठ (हिन्दी)

जय जय भगवंते सदा, मंगल मूल महान।
वीतराग सर्वज्ञ प्रभु, नमौं जोरि जुगपान॥

श्रीजिन जग में ऐसो, को बुधवंत जू।
जो तुम गुण वरननि करि पावै अन्त जू।
इन्द्रादिक सुर चार ज्ञानधारी मुनि।
कहि न सकैं तुम गुणगण हे त्रिभुवन धनी॥

अनुपम अमित तुमगणनि वारिधि, ज्यों अलोकाकाश है।
किमि धरैं हम उर कोष में, सो अकथ गुणमणि राश है।
पै निज प्रयोजन सिद्धि की, तुम नाम में ही शक्ति है।
यह चित्त में सरधान यातैं, नाम ही में भक्ति है॥

ज्ञानावरणी दर्शन आवरणी भने।
कर्ममोहनी अन्तराय चारों हने।
लोकालोक विलोक्यो केवलज्ञान में।
इन्द्रादिक के मुकुट नये सुरथान में॥

तब इन्द्र जान्यो अवधितैं, उठि सुरन युत वंदत भयो।
तुम पुन्य को प्रेरयो हरी, है मुदित धनपतिसौं चयो।

अब वेगि जाय रचौं समवसृति, सफल सुरपद को करौं।
साक्षात् श्री अरहंत के, दर्शन करौं कल्मष हरौं॥

ऐसे वचन सुने सुरपति के धनपति।
चल आयो तत्काल मोद धारैं अती॥
वीतराग छवि देखि शब्द जय जय चयौ।
दै प्रदच्छिना बार-बार वंदत भयौ॥

अति भक्ति भीनौ, नम्रचित है, समवशरण रच्यौ सही।
ताकी अनूपम शुभगती को, कहन समरथ कोउ नहीं॥
प्राकार तोरण सभामंडप, कनक मणिमय छाजहीं।
नगजड़ित गंधकुटी मनोहर, मध्यभाग विराजहीं॥

सिंहासन तामध्य बन्यौ अद्भुत दिपै।
तापर वारिज रच्यो प्रभा दिनकर छिपै॥
तीनछत्र सिर शोभित चौसठ चमर जी।
महाभक्तियुत ढोरत हैं तहाँ अमरजी॥

प्रभु तरन तारन कमल ऊपर, अंतरिक्ष विराजिया।
यह वीतराग दशा प्रतच्छ, विलोकि भविजन सुख लिया॥
मुनि आदि द्वादश सभा के, भवि जीव मस्तक नायकै।
बहुभाँति बारम्बार पूजैं, नमैं गुणगण गायकै॥

परमौदारिक दिव्य देह पावन सही।
क्षुधा तृषा चिंता भय गद दूषण नहीं॥

जन्म जरा मृति अरति शोक विस्मय नसे।
राग द्वेष निद्रा मद मोह सबै खसे॥

श्रमबिना श्रमजल रहित, पावन अमल ज्योतिस्वरूपजी।
शरणागतनिकी अशुचिता हरि, करत विमल अनूपजी॥
ऐसे प्रभू की शांति मुद्रा को न्हवन जलतैं करैं।
'जस' भक्तिवश मन उक्तितैं, हम भानु ढिंग दीपक धरैं॥

तुमतौ सहज पवित्र यही निश्चय भयो।
तुम पवित्रताहेत नहीं मज्जन ठयो॥
मैं मलीन रागादिक मलतै है रह्यो।
महामलिन तन में वसुविधिवश दुखसह्यो॥

वीत्यो अनन्तो काल यह मेरी अशुचिता ना गई।
तिस अशुचिताहर एक तुमही, भरहु बांछा चित्त ठई॥
अब अष्टकर्म विनाश सब, मल रोषरागादिक हरौ।
तनरूप कारागेह तैं, उद्धार शिववासा करौ॥

मैं जानत तुम अष्टकर्म हरि शिव गये।
आवागमन विमुक्त रागवर्जित भये॥
पर तथापि मेरो मनोरथ पूरत सही।
नयप्रमानतैं जानि महासाता लही॥

पापाचरण तजि न्हवन, करता चित्त मैं ऐसे धरूँ।
साक्षात श्री अरहंत का, मानो न्हवन परसन करूँ॥

(यहाँ पर अभिषेक करें)

ऐसे विमल परिणाम होते, अशुभ नसि शुभबंध तैं।
विधि अशुभ नसि शुभबंधतैं, ह्वै शर्म सब विधि तासतैं॥

पावन मेरे नयन भये तुम दरस तैं।
पावन पानि भये तुम चरननि परस तैं॥
पावन मन ह्वै गयो तिहारे ध्यान तैं।
पावन रसना मानी तुम गुण गान तैं॥

पावन भई परजाय मेरी, भयौ मैं पूरणधनी।
मैं शक्ति पूर्वक भक्ति कीनी, पूर्ण भक्ति नहीं बनी॥
धन धन्य ते बड़भागि भवि, तिन नींव शिवघर की धरी।
वर क्षीरसागर आदि जल मणिकुंभभरि भक्ति करी॥

विघनसघन वन दाहन-दहन प्रचंड हो।
मोह महातम दलन प्रबल मारतण्ड हो॥
ब्रह्मा, विष्णु, महेश, आदि संज्ञा धरो।
जगविजयी जमराज नाश ताको करो॥

आनंद कारण दुखनिवारण, परम मंगलमय सही।
मोसों पतित नहिं और, तुमसों, पतिततार सुन्यौं नहीं॥
चिंतामणी पारस कल्पतरु, एकभव सुखकार ही।
तुम भक्तिनौका जे चढ़े ते, भये भवदधि पार ही॥

दोहा

तुम भवदधितैं तरि गये, भये निकल अविकार ॥
तारतम्य इस भक्ति को, हमें उतारौं पार ॥

पूरा पाठ पढ़कर निर्मल वस्त्र से प्रतिमाजी का मार्जन करें और गन्धोदक लगायें। पश्चात् 9 बार णमोकार मन्त्र पढ़कर नमस्कार करें।

•

## लघु अभिषेक पाठ

मैं परम पूज्य जिनेन्द्र प्रभु को भाव से वंदन करूँ।
मन वचन काय त्रियोग पूर्वक शीश चरणों में धरूँ ॥
सर्वज्ञ केवल ज्ञानधारी की सुछवि उर में धरूँ।
निर्ग्रन्थ पावन वीतराग महान की जय उच्चरूँ ॥
उज्ज्वल दिगम्बर वेश दर्शन कर हृदय आनन्द भरूँ।
अति विनय पूर्वक नमनकर के सफल यह नरभव करूँ ॥
मैं शुद्ध जल के कलश प्रभु के पूज्य मस्तक पर धरूँ।
जलधार देकर हर्ष से अभिषेक प्रभुजी का करूँ ॥
मैं न्हवन प्रभु का भाव से कर सकल भव पातक हरूँ।
प्रभु चरणकमल पखारकर सम्यक्त्व की संपत्ति वरूँ ॥

## संस्कृताभिषेक-पाठः

**श्रीमन्- नता- मर- शिरस्तट- रत्न- दीप्ति-**
**तोयाव- भासि- चरणाम्बुज- युग्म- मीशम् ।**
**अर्हन्त- मुन्नत- पद- प्रद- माभि- नम्य,**
**तन्मूर्ति-षूद्य-दभिषेक-विधिं करिष्ये ॥1॥**

अथ पौर्वाह्णिकदेव-वन्दनायां पूर्वाचार्यानुक्रमेण सकल-कर्म-क्षयार्थं भाव-पूजा-वन्दनास्तव समेतं श्रीपंचमहागुरुभक्तिपुरस्सरं कायोत्सर्गं करोम्यहम् ।

(यह पढ़कर नौ बार णमोकार मंत्र पढ़ें)

**याः कृत्रिमास् तदितराः प्रतिमा जिनस्य,**
**संस्ना-पयन्ति-पुरुहूत-मुखा-दयस्ताः ।**
**सद्भाव-लब्धि-समयादि-निमित्त-योगात्,**
**तत्रैव मुज्ज्वल-धिया कुसुमं क्षिपामि ॥2॥**

(यह पढ़कर थाली में पुष्पांजलि छोड़कर अभिषेक की प्रतिज्ञा करें)

**श्रीपीठक्लृप्ते विशदाक्षतौघैः श्रीप्रस्तरे पूर्ण शशाङ्क-कल्पे ।**
**श्रीवर्तके चन्द्रमसीति वार्तां, सत्यापयन्तीं श्रियमा लिखामि ॥3॥**

ॐ ह्रीं अर्हं श्री लेखनं करोमि ।

**कनकादि-निभं कम्रं पावनं पुण्य-कारणम् ।**
**स्थापयामि परं पीठं जिनस्नपनाय भक्तितः ॥4॥**

ॐ ह्रीं श्रीपीठस्थापनं करोमि ।

(यह पढ़कर अभिषेक की थाली में सिंहासन स्थापित करें)

भृंगार- चामर- सुदर्पण- पीठ- कुम्भ,
तालध्वजा - तप - निवारक - भूषिताग्रे ।
वर्धस्व - नन्द - जय - पाठ - पदा - वलीभिः,
सिंहासने जिन भवन्त-महं श्रयामि ॥5॥

वृषभादि सुवीरान्तान् जन्माप्तौ जिष्णुचर्चितान् ।
स्थापयाम्यभिषेकाय भक्त्या पीठे महोत्सवम् ॥6॥

ॐ ह्रीं श्रीधर्मतीर्थाधिनाथ भगवन्निह सिंहासने तिष्ठ तिष्ठ।

(यह पढ़कर प्रतिमा जी विराजमान करें)

श्रीतीर्थकृत्स्नपन - वर्य - विधौ - सुरेन्द्रः
क्षीराब्धि-वारिभि-रपूरय-दुद्घ-कुम्भान् ।
याँस्तादृशा-निव विभाव्य यथा-र्हणीयान्,
संस्थापये कुसुम-चन्दन-भूषि-ताग्रान् ॥7॥

शात-कुम्भीय-कुम्भौघान् क्षीराब्धेस् तोय-पूरितान् ।
स्थापयामि जिनस्नान-चन्दनादि-सुचर्चितान् ॥8॥

ॐ ह्रीं चतुःकोणेषु चतुःकलशस्थापनं करोमि।

आनन्द - निर्भर - सुर - प्रमदादि - गानै
र्वादित्र - पूर - जय - शब्द - कलप्रशस्तैः ।
उद्गीय- मान- जगती- पति- कीर्ति- मेनां,
पीठस्थलीं वसु-विधार्चन-योल्लसामि ॥9॥

ॐ ह्रीं स्नपनपीठस्थिताय जिनायार्घं निर्वपामीति स्वाहा।

कर्म- प्रबन्ध- निगडै- रपि हीन- ताप्तं,
ज्ञात्वापि भक्ति-वशतः परमादि-देवम् ।

**त्वां स्वीय-कल्मष-गणोन्मथ-नाय देव**
**शुद्धोदकै-रभिनयामि महा-भिषेकम् ॥10॥**

ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं ऐं अर्हं वं मं हं सं तं पं वं वं मं मं हं हं सं सं तं तं पं पं झं झं झ्वीं झ्वीं क्ष्वीं क्ष्वीं द्रां द्रां द्रीं द्रीं द्रावय द्रावय नमोऽर्हते भगवते श्रीमते पवित्रतर जलेन जिनमभिषेचयामि स्वाहा।

**तीर्थोत्तम-भवै-नीरैः, क्षीर-वारिधि-रूपकैः।**
**स्नपयामि सुजन्माप्तान्, जिनान् सर्वार्थसिद्धिदान् ॥11॥**

ॐ ह्रीं श्री वृषभादिवीरान्तान् जलेन स्नपयामि स्वाहा।

**सकल-भुवन-नाथं तं जिनेन्द्रं सुरेन्द्रै,**
**रभिषव-विधि-माप्तं स्नातकं स्नापयामः।**
**यदिभिषवन-वारां बिन्दु-रेकोऽपि नृणां,**
**प्रभवतिहिविधातुं भुक्तिसन्मुक्तिलक्ष्मीम् ॥12॥**

ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं ऐं अर्हं वं मं हं सं तं पं वं वं मं मं हं हं सं सं तं तं पं पं झं झं झ्वीं झ्वीं क्ष्वीं क्ष्वीं द्रां द्रां द्रीं द्रीं हं झं क्ष्वीं क्ष्वीं हं सः झं वं ह्ः यः सः क्षां क्षीं क्षूं क्षैं क्षों क्षौं क्षं क्षः क्ष्वीं ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रें ह्रैं ह्रों ह्रौं ह्रं ह्रः ह्रीं द्रां द्रीं नमोऽर्हते भगवते श्रीमते ठः ठः इति बृहच्छान्तिमन्त्रेणाभिषेकं करोमि।

**पानीय-चन्दन-सदक्षत-पुष्प पुञ्ज-**
**नैवेद्य-दीपक-सुधूप-फल-व्रजेन।**
**कर्माष्टक-क्रथक-वीर मनन्त-शक्तिं,**
**सम्पूजयामि महसा महसां निधानम् ॥13॥**

ॐ ह्रीं अभिषेकान्ते वृषभादिवीरान्तेभ्योऽर्घं निर्वपामीति स्वाहा।

हे तीर्थपा निज-यशो-धवली-कृताशाः
सिद्धौष-धाश्च भव-दुःख-महा-गदा-नाम्।
सद्भव्य-हृज्जनित-पङ्क-कबन्ध-कल्पा,
यूयं जिनाः सतत शान्तिकरा भवन्तु ॥14॥

शान्त्यर्थं पुष्पाञ्जलिं क्षिपामि।

नत्वा मुहु-र्निज-करै-रमृतोप-मेयैः
स्वच्छै-र्जिनेन्द्र तव चन्द्र-करा-वदातैः।
शुद्धांशुकेन विमलेन नितान्त-रम्ये,
देहेस्थितान् जलकणान् परि-मार्जयामि ॥15॥

ॐ ह्रीं अमलांशुकेन जिनबिम्बमार्जनं करोमि।

स्नानं विधाय भवतोऽष्ट सहस्र-नाम्ना
मुच्चारणेन मनसो वचसो विशुद्धिम्।
जिघृक्षु-रिष्टि-मिन तेऽष्ट-तयीं विधातुं,
सिंहासने विधि-वदत्र निवेशयामि ॥16॥

(भगवान को सिंहासन पर विराजमान करें)

जल-गन्धाक्षतैः पुष्पैश्, चरु-दीप-सुधूपकैः।
फलै-रर्घै-र्जिनमर्चेज्, जन्मदुःखापहानये ॥17॥

ॐ ह्रीं पीठस्थिताय जिनायार्घं निर्वपामीति स्वाहा।

नत्वा परीत्य निज-नेत्र-ललाट-योश्च,
व्यातु-क्षणेन हरता-दघ-सञ्चयं मे।

शुद्धो-दकं जिनपते तव पाद-योगाद्,
भूयाद्-भवातपहरं धृत-मादरेण ॥18॥

मुक्ति-श्रीवनिता-करोदक-मिदं, पुण्याङ्-कुरोत्पादकं
नागेन्द्र-त्रिदशेन्द्र-चक्रपदवी, राज्याभि-षेकोदकम् ।
सम्यग्ज्ञान- चरित्र- दर्शन- लता- संवृद्धि- सम्पादकं,
कीर्ति-श्रीजयसाधकं तव जिन-स्नानस्य गन्धोदकम् ॥19॥

श्रद्धापूर्वक गंधोदक लगावें।

•

## विनयपाठ

इह विधि ठाड़ो होयके, प्रथम पढ़ै जो पाठ।
धन्य जिनेश्वर देव तुम, नाशे कर्मजु आठ॥

अनंत चतुष्टय के धनी, तुम ही हो सिरताज।
मुक्ति-वधु के कंत तुम, तीन भुवन के राज॥

तिहुँ जग की पीड़ा-हरन, भवदधि शोषणहार।
ज्ञायक हो तुम विश्व के, शिवसुख के करतार॥

हरता अघ अंधियार के, करता धर्म प्रकाश।
थिरतापद दातार हो, धरता निजगुण रास॥

धर्मामृत उर जलधि सों, ज्ञानभानु तुम रूप।
तुमरे चरण-सरोज को, नावत तिहुँ जग भूप॥

मैं वंदौं जिनदेव को, कर अति निर्मल भाव।
कर्म बंध के छेदने, और न कछू उपाव॥

भविजन कों भव कूप तैं, तुमही काढ़नहार।
दीनदयाल अनाथपति, आतम गुणभंडार॥

चिदानंद निर्मल कियो, धोय कर्मरज मैल।
सरल करी या जगत में भविजन को शिवगैल॥

तुम पदपंकज पूजतैं, विघ्न रोग टर जाय।
शत्रु मित्रता को धरै, विष निरविषता थाय॥
चक्री खगधर इंद्रपद, मिले आपतैं आप।
अनुक्रमकर शिवपद लहैं, नेम सकल हनि पाप॥
तुम बिन मैं व्याकुल भयो, जैसे जल बिन मीन।
जन्म जरा मेरी हरो, करो मोहि स्वाधीन॥
पतित बहुत पावन किये, गिनती कौन करेव।
अंजन से तारे प्रभु, जय जय जय जिनदेव॥
थकी नाव भवदधि विषै, तुम प्रभु पार करेव।
खेवटिया तुम हो प्रभु, जय जय जय जिनदेव॥
रागसहित जग में रुल्यो, मिले सरागी देव।
वीतराग भेट्यो अबै, मेटो राग कुटेव॥
कित निगोद कित नारकी, कित तिर्यंच अज्ञान।
आज धन्य मानुष भयो, पायो जिनवर थान॥
तुमको पूजैं सुरपती, अहिपति नरपति देव।
धन्य भाग्य मेरो भयो, करन लग्यो तुम सेव॥
अशरण के तुम शरण हो, निराधार आधार।
मैं डूबत भवसिंधु में, खेओ लगाओ पार॥
इन्द्रादिक गणपति थके, कर विनती भगवान।
अपनो विरद निहारकै, कीजे आप समान॥

तुमरी नेक सुदृष्टितैं, जग उतरत है पार।
हाहा डूबो जात हों, नेक निहार निकार॥
जो मैं कहहूँ और सों, तो न मिटै उर झार।
मेरी तो तोसों बनी, तातैं करौं पुकार॥
वंदो पांचौं परमगुरु, सुरगुरु वंदत जास।
विघनहरन मंगलकरन, पूरन परम प्रकाश॥
चौबीसों जिनपद नमों, नमों शारदा माय।
शिवमग साधक साधु नमि, रच्योपाठ सुखदाय॥
मंगल मूर्ति परम पद, पंच धरो नित ध्यान।
हरो अमंगल विश्व का, मंगलमय भगवान॥
मंगल जिनवर पदनमों, मंगल अर्हंत देव।
मंगलकारी सिद्ध पद, सो वन्दों स्वयमेव॥
मंगल आचरज मुनि, मंगल गुरु उवझाय।
सर्व साधु मंगल करो, वन्दों मन वच काय॥
मंगल सरस्वती मात का, मंगल जिनवर धर्म।
मंगल मय मंगल करो, हरो असाता कर्म॥
या विधि मंगल से सदा, जग में मंगल होत।
मंगल नाथूराम यह, भव सागर दृढ़ पोत॥

॥ इति मंगलपाठ॥

●

# नित्य-पूजा

**ॐ जय जय जय। नमोऽस्तु नमोऽस्तु नमोऽस्तु।**
**णमो अरहंताणं णमो सिद्धाणं णमो आइरियाणं।**
**णमो उवज्झायाणं णमो लोए सव्वसाहूणं।**

ॐ ह्रीं अनादिमूलमन्त्रेभ्यो नमः पुष्पाञ्जलिं क्षिपामि।

**चत्तारि मंगलं-अरहंता मंगलं, सिद्धा मंगलं,**
**साहू मंगलं, केवलिपण्णत्तो धम्मो मंगलं।**
**चत्तारि लोगुत्तमा-अरहंता लोगुत्तमा,**
**सिद्धा लोगुत्तमा, साहू लोगुत्तमा,**
**केवलिपण्णत्तो धम्मो लोगुत्तमो।**
**चत्तारि सरणं पव्वज्जामि-अरहंते सरणं पव्वज्जामि,**
**सिद्धे सरणं पव्वज्जामि, साहू सरणं पव्वज्जामि,**
**केवलिपण्णत्तं धम्मं सरणं पव्वज्जामि।**

ॐ नमोऽर्हते स्वाहा, पुष्पाञ्जलिं क्षिपामि।

**अपवित्रः पवित्रो वा, सुस्थितो दुःस्थितोऽपि वा**
**ध्यायेत्पञ्च नमस्कारं, सर्व-पापैः प्रमुच्यते ॥1॥**
**अपवित्रः पवित्रो वा सर्वावस्थां गतोऽपि वा।**
**यः स्मरेत्परमात्मानं स बाह्याभ्यन्तरे शुचिः ॥2॥**

अपराजितमन्त्रोऽयं, सर्व-विघ्न-विनाशनः।
मङ्गलेषु च सर्वेषु, प्रथमं मङ्गलं मतः ॥3॥
एसो पञ्च-णमोयारो सव्व-पावप्पणासणो।
मङ्गलाणं च सव्वेसिं, पढमं होइ मङ्गलं ॥4॥
अर्हमित्यक्षरं ब्रह्मवाचकं परमेष्ठिनः।
सिद्धचक्रस्य सद्बीजं सर्वतः प्रणमाम्यहम् ॥5॥
कर्माष्टक-विनिर्मुक्तं मोक्ष-लक्ष्मी-निकेतनम्।
सम्यक्त्वादि-गुणोपेतं, सिद्धचक्रं नमाम्यहम् ॥6॥
विघ्नौघाः प्रलयं यान्ति शाकिनी-भूत-पन्नगाः।
विषं निर्विषतां याति स्तूयमाने जिनेश्वरे ॥7॥
(पुष्पाञ्जलिं क्षिपामि)

### पञ्चकल्याणक का अर्घ

उदक-चन्दन-तण्डुल-पुष्पैश्चरु-सुदीप-सुधूप-फलार्घकैः।
धवल-मंगल-गान-रवाकुले, जिनगृहे कल्याणमहं यजे ॥

ॐ ह्रीं श्रीभगवतो गर्भजन्मतपज्ञाननिर्वाण-पंचकल्याणकेभ्योऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

### पंचपरमेष्ठी का अर्घ

उदक-चन्दन-तण्डुल-पुष्पैश्चरु-सुदीप-सुधूप-फलार्घकैः।
धवल-मंगल-गान-रवाकुले, जिनगृहे जिननाथ महं यजे ॥

ॐ ह्रीं श्रीअर्हत्सिद्धाचार्योपाध्याय-सर्वसाधुभ्योऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

**जिन सहस्रनाम का अर्घ**

**उदक-चन्दन-तण्डुल-पुष्कैश्चरु-सुदीप-सुधूप-फलार्धकैः।**
**धवल-मंगल-गान-रवाकुले, जिनगृहे जिन नाम यजामहे ॥**

ॐ ह्रीं श्रीभगवज्जिनअष्टोत्तर-सहस्रनामभ्यो अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

**जिनवाणी का अर्घ**

**उदक-चन्दन-तण्डुल-पुष्कैश्चरु-सुदीप-सुधूप-फलार्धकैः।**
**धवल-मंगल-गान-रवाकुले, जिनगृहे जिनसूत्र महं यजे ॥**

ॐ सम्यक्‌दर्शन-ज्ञान-चारित्राणि तत्वार्थसूत्र-दशाध्याय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

**श्रीमज्जिनेन्द्रमभिवन्द्य जगत्त्रयेशं**

**स्याद्वाद-नायकमनन्त-चतुष्टयार्हम्।**
**श्री मूलसङ्घ-सुदृशां सुकृतैक हेतु-**
**जैनेन्द्र-यज्ञ-विधिरेष मयाभ्यधायि ॥8॥**
**स्वस्ति त्रिलोक-गुरवे जिनपुङ्गवाय**
**स्वस्ति स्वभाव-महिमोदय-सुस्थिताय।**
**स्वस्ति प्रकाश-सहजोर्जित दृङ्मयाय**
**स्वस्ति प्रसन्न-ललिताद्भुत-वैभवाय ॥9॥**
**स्वस्त्युच्छलद्विमल-बोधसुधा-प्लवाय**
**स्वस्ति स्वभाव-परभाव-विभासकाय।**
**स्वस्ति त्रिलोकविततैक-चिदुद्गमाय**
**स्वस्ति त्रिकाल-सकलायत-विस्तृताय ॥10॥**

द्रव्यस्य शुद्धिमधिगम्य यथानुरूपं
भावस्य शुद्धिमधिकामधिगन्तुकामः।
आलम्बनानि विविधान्यवलम्ब्य वल्गन्
भूतार्थ-यज्ञ-पुरुषस्य करोमि यज्ञम् ॥11॥

अर्हत् पुराणपुरुषोत्तम पावनानि
वस्तून्यनूनमखिलान्ययमेक एव।
अस्मिन् ज्वलद्विमल-केवल-बोधवन्हौ
पुण्यं समग्रमहमेकमना जुहोमि ॥12॥

(इति पुष्पाञ्जलिं क्षिपामि।)

श्रीवृषभो नः स्वस्ति, स्वस्ति श्री अजितः।
श्रीसम्भवः स्वस्ति, स्वस्ति श्रीअभिनन्दनः।

श्रीसुमतिः स्वस्ति, स्वस्ति श्रीपद्मप्रभः।
श्रीसुपार्श्वः स्वस्ति, स्वस्ति श्रीचन्द्रप्रभः।

श्रीपुष्पदन्तः स्वस्ति, स्वस्ति श्रीशीतलः।
श्रीश्रेयान् स्वस्ति, स्वस्ति श्रीवासुपूज्यः।

श्रीविमलः स्वस्ति, स्वस्ति श्रीअनन्तः।
श्रीधर्मः स्वस्ति, स्वस्ति श्रीशान्तिः।

श्रीकुन्थुः स्वस्ति, स्वस्ति श्रीअरहनाथः।
श्रीमल्लिः स्वस्ति, स्वस्ति श्रीमुनिसुव्रतः।

श्रीनमिः स्वस्ति, स्वस्ति श्रीनेमिनाथः।
श्रीपार्श्वः स्वस्ति, स्वस्ति श्रीवर्धमानः।

(पुष्पाञ्जलिं क्षिपामि।)

●

# स्वस्ति मंगल पाठ

नित्याप्रकम्पाद्भुत-केवलौघाः स्फुरन्मनःपर्यय-शुद्धबोधाः।
दिव्यावधिज्ञान-बलप्रबोधाः, स्वस्ति क्रियासुः परमर्षयो नः॥

कोष्ठस्थ-धान्योपममेकबीजं, संभिन्नसंश्रोतृ-पदानुसारि।
चतुर्विधं बुद्धिबलं दधानाः, स्वस्ति क्रियासुः परमर्षयो नः॥

संस्पर्शनं संश्रवणं च दूरा दास्वादन-घ्राण-विलोकनानि।
दिव्यान्मतिज्ञानबलाद्वहन्तः, स्वस्ति क्रियासुः परमर्षयो नः॥

प्रज्ञाप्रधानाः श्रमणाः समृद्धाः, प्रत्येकबुद्धा दशसर्वपूर्वैः।
प्रवादिनोऽष्टांगनिमित्तविज्ञाः स्वस्ति क्रियासुः परमर्षयो नः॥

जङ्घानल-श्रेणि-फलाम्बु-तन्तु प्रसून-बीजाङ्कुर चारणाव्हाः।
नभोऽङ्गण-स्वैर-विहारिणश्च, स्वस्ति क्रियासुः परमर्षयो नः॥

अणिम्नि दक्षाः कुशलाः महिम्नि, लघिम्नि शक्ताः कृतिनो गरिम्णि।
मनो-वपुर्वाग्बलिनश्च नित्यं, स्वस्ति क्रियासुः परमर्षयो नः॥

सकामरूपित्व-वशित्वमैश्यं, प्राकाम्यमन्तर्द्धिमथाप्तिमाप्ताः।
तथाऽप्रतीघातगुणप्रधानाः, स्वस्ति क्रियासुः परमर्षयो नः॥

दीप्तं च तप्तं च तथामहोग्रं, घोरं तपो घोरपराक्रमस्थाः।
ब्रह्मपरं घोरगुणाश्चरन्तः, स्वस्ति क्रियासुः परमर्षयो नः॥

आमर्ष-सर्वौषधयस्तथाशी-र्विषाविषा दृष्टिविषाविषाश्च ।
सखिल्ल-विड्ंजल्ल-मलौषधीशाः, स्वस्ति क्रियासुः परमर्षयो नः ॥

क्षीरं स्रवंतोऽत्र घृतं स्रवंतो, मधु स्रवंतोऽप्यमृतं स्रवंतः ।
अक्षीणसंवास-महानसाश्च, स्वस्ति क्रियासुः परमर्षयो नः ॥

(इति पुष्पाञ्जलिं क्षिपामि)

●

# देव-शास्त्र-गुरु पूजा

**प्रथम देव अरहंत सुश्रुत सिद्धान्त जू।**
**गुरु निरग्रंथ महंत मुकतिपुर-पंथ जू॥**
**तीन रतन जगमांहि सु ये भवि ध्याइये।**
**तिनकी भक्ति-प्रसाद परम-पद पाइये॥**

**पूजों पद अरहंत के, पूजों गुरुपद सार।**
**पूजों देवी सरस्वती, नित प्रति अष्ट प्रकार॥**

ॐ ह्रीं श्रीदेव-शास्त्र-गुरुसमूह! अत्र अवतर अवतर संवौषट्।
ॐ ह्रीं श्रीदेव-शास्त्र-गुरुसमूह! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः।
ॐ ह्रीं श्रीदेव-शास्त्र-गुरुसमूह! अत्र मम सन्निहितो भवभव वषट्।

**सुरपति उरग नरनाथ तिन करि, वन्दनीक सुपदप्रभा।**
**अति शोभनीक सुवरण उज्ज्वल, देख छवि मोहित सभा॥**
**वर नीर क्षीर-समुद्र घट भरि, अग्र तसु बहुविधि नचूँ।**
**अरहंत श्रुत-सिद्धान्त गुरु निर्ग्रन्थ नित पूजा रचूँ॥**

**मलिनवस्तु हर लेत सब, जल-स्वभाव मल छीन।**
**जासों पूजों परमपद, देव-शास्त्र-गुरु-तीन॥**

ॐ ह्रीं श्रीदेव-शास्त्र-गुरुभ्यो जन्म-जरा-मृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

जे त्रिजग-उदर मँझार प्रानी, तपत अति दुद्धर खरे।
तिन अहित-हरन सुवचन, जिनके परम शीतलता भरे॥
तसु भ्रमर-लोभित घ्राण पावन, सरस चन्दन घिसि सचूँ।
अरहंत श्रुत-सिद्धान्त गुरु-निर्ग्रन्थ नित पूजा रचूँ॥
चंदन शीतलता करै, तपत वस्तु परवीन।
जासों पूजों परमपद, देव-शास्त्र-गुरु तीन॥
ॐ ह्रींश्री देव-शास्त्र-गुरुभ्यः संसार-ताप-विनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।
यह भव-समुद्र अपार तारण, के निमित्त सुविधि ठई।
अति दृढ़ परम-पावन जथारथ, भक्ति वर नौका सही॥
उज्ज्वल अखंडित शालि तंदुल, पुंज धरि त्रयगुण जचूँ।
अरहंत श्रुत-सिद्धान्त गुरु-निर्ग्रन्थ नित पूजा रचूँ॥
तंदुल शालि सुगंधि अति, परम अखंडित बीन।
जासों पूजों परम पद, देव-शास्त्र-गुरु तीन॥
ॐ ह्रीं श्रीदेव-शास्त्र-गुरुभ्योऽक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।
जे विनयवंत सुभव्य-उर अंबुज प्रकाशन भान हैं।
जे एक मुख चारित्र भाषत, त्रिजग माँहि प्रधान हैं॥
लहि कुन्द-कमलादिक पहुप, भव-भव कुवेदन सों बचूँ।
अरहंत श्रुत-सिद्धांत गुरु निर्ग्रन्थ नित पूजा रचूँ॥
विविध भाँति परिमल सुमन, भ्रमर जास आधीन।
जासों पूजों परमपद, देव-शास्त्र-गुरु तीन॥
ॐ ह्रीं श्रीदेव-शास्त्र-गुरुभ्यः कामबाण-विध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

अति सबल मद-कंदर्प जाको, क्षुधा-उरग अमान है।
दुस्सह भयानक तासु नाशन, को सुगरुड़ समान है॥
उत्तम छहों रस युक्त नित, नैवेद्य कर घृत में पचूँ।
अरहंत श्रुत-सिद्धांत गुरु निर्ग्रन्थ नित पूजा रचूँ॥

नानाविधि संयुक्तरस, व्यंजन सरस नवीन।
जासों पूजों परमपद, देव-शास्त्र-गुरु तीन॥

ॐ ह्रीं श्रीदेव-शास्त्र-गुरुभ्यः क्षुधा-रोग-विनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जे त्रिजग-उद्यम नाश कीने, मोह-तिमिर महाबली।
तिहि कर्मघाती ज्ञानदीप प्रकाशज्योति प्रभावली॥
इह भाँति दीप प्रजाल कंचन, के सुभाजन में खचूँ।
अरहंत श्रुत-सिद्धांत गुरु निर्ग्रन्थ नित पूजा रचूँ॥

स्व-परप्रकाशक ज्योति अति, दीपक तमकरि हीन।
जासों पूजों परमपद, देव-शास्त्र-गुरु तीन॥

ॐ ह्रीं श्रीदेव-शास्त्र-गुरुभ्यो मोहांधकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

जो कर्म-ईंधन दहन अग्निसमूह सम उद्धत लसै।
वर धूप तासु सुगंधिताकरि, सकल परिमलता हंसै॥
इह भाँति धूप चढ़ाय नित भव-ज्वलन माहिं नहीं पचूँ।
अरहंत श्रुत-सिद्धांत गुरु-निर्ग्रन्थ नित पूजा रचूँ॥

अग्निमाहिं परिमल दहन, चंदनादि गुणलीन।
जासों पूजों परमपद देव-शास्त्र-गुरु तीन॥

ॐ ह्रीं श्रीदेव-शास्त्र-गुरुभ्योऽष्टकर्मविध्वंसनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

लोचन सुरसना घ्राण उर, उत्साह के करतार हैं।
मोपै न उपमा जाय वरणी, सकल फल गुणसार हैं॥
सो फल चढ़ावत अर्थपूरन, परम अमृतरस सचूँ।
अरहंत श्रुत-सिद्धांत गुरु-निर्ग्रन्थ नित पूजा रचूँ॥

जे प्रधान फल फलविषैं, पंचकरण-रस-लीन।
जासों पूजों परमपद, देव-शास्त्र-गुरु तीन॥

ॐ ह्रीं श्रीदेव-शास्त्र-गुरुभ्यो मोक्ष-फलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

जल परम उज्ज्वल गन्ध अक्षत, पुष्प चरु दीपक धरूँ।
वर धूप निर्मल फल विविध बहु जनम के पातक हरूँ॥
इह भाँति अर्घ्य चढ़ाय नित भवि करत शिव-पंकति मचूँ।
अरहंत श्रुत-सिद्धांत गुरु निर्ग्रन्थ नित पूजा रचूँ॥

वसुविधि अर्घ्य संजाये कै, अति उछाह मन कीन।
जासों पूजों परमपद, देव-शास्त्र-गुरु तीन॥

ॐ ह्रीं श्रीदेव-शास्त्र-गुरुभ्योऽनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घम् निर्वपामीति स्वाहा।

## जयमाला

देव-शास्त्र-गुरु रतन शुभ, तीन रतन करतार।
भिन्न-भिन्न कहुँ आरती, अल्प सुगुण विस्तार॥

चउ कर्म सु त्रेसठ प्रकृति नाशि, जीते अष्टादश दोषराशि।
जे परम सुगुण हैं अनंत धीर, कहवत के छय्यालिस गुणगंभीर॥

**शुभ समवशरण शोभा अपार, शत इन्द्र नमत कर सीस धार।**
**देवाधिदेव अरहन्त देव, वन्दौं मन-वच-तन कर सुसेव॥**

**जिनकी ध्वनि है ओंकाररूप, निर-अक्षरमय महिमा अनूप।**
**दश-अष्ट महाभाषा समेत, लघुभाषा सात शतक सुचेत॥**

**सो स्याद्वादमय सप्तभङ्ग, गणधर गूँथे बारह सुअंग।**
**रवि-शशि न हरै सो तम हराय, सो शास्त्र नमों बहु प्रीतिल्याय॥**

**गुरु आचारज उवझाय साध, तन-नगन रतनत्रय-निधि अगाध।**
**संसार देह वैराग्य धार, निरवांछि तपैं शिव-पद निहार॥**

**गुण छत्तिस पच्चिस आठ-बीस, भव-तारन-तरन जिहाज ईस।**
**गुरु की महिमा वरनी न जाय, गुरु नाम जपों मन-वचन-काय॥**

**कीजे शक्ति प्रमान, शक्ति बिना सरधा धरै।**
**'द्यानत' सरधावान, अजर-अमर पद भोगवै॥**

ॐ ह्रीं श्रीदेव-शास्त्र-गुरुभ्योऽनर्घपदप्राप्तये महार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

**श्री जिनवर प्रसाद तैं सुखी रहें सब जीव।**
**यातैं तन मन वचन तैं, सेवो भव्य सदीव॥**

इत्याशीर्वादः पुष्पाञ्जलिं क्षिपामि।

●

# देव-शास्त्र-गुरु पूजा

**केवल रवि-किरणों से जिसका, सम्पूर्ण प्रकाशित है अन्तर।**
**उस श्री जिनवाणी में होता, तत्त्वों का सुन्दरतम दर्शन॥**
**सद्दर्शन-बोध-चरण-पथ पर, अविरल जो बढ़ते हैं मुनिगण।**
**उन देव, परम आगम गुरु को शत-शत वन्दन, शत-शतवंदन॥**

ॐ ह्रीं श्रीदेवशास्त्रगुरु समूह! अत्र अवतर अवतर संवौषट्।
ॐ ह्रीं श्रीदेवशास्त्रगुरु समूह! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः। स्थापनं।
ॐ ह्रीं श्रीदेवशास्त्रगुरु समूह! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्।

**इन्द्रिय के भोग मधुर विष सम, लावण्यमयी कञ्चन काया।**
**यह सब कुछ जड़ की क्रीड़ा है, मैं अब तक जान नहीं पाया॥**
**मैं भूल स्वयं के वैभव को, पर ममता में अटकाया हूँ।**
**अब निर्मल सम्यक्-नीर लिये, मिथ्यामल धोने आया हूँ॥**

ॐ ह्रीं श्रीदेवशास्त्रगुरुभ्यो जन्मजरामृत्यु-विनाशनाय जलं नि. स्वाहा।

**जड़ चेतन की सब परिणति, प्रभु! अपने-अपने में होती है।**
**अनुकूल कहें, प्रतिकूल कहें, यह झूठी मन की वृत्ति है॥**
**प्रतिकूल संयोगों में क्रोधित, होकर संसार बढ़ाया है।**
**सन्तप्त हृदय प्रभु! चंदन सम, शीतलता पाने आया है॥**

ॐ ह्रीं श्रीदेवशास्त्रगुरुभ्यो संसारताप-विनाशनाय चन्दनं नि. स्वाहा।

**उज्ज्वल हूँ कुन्द धवल हूँ प्रभु! पर से न लगा हूँ किंचित भी।**
**फिर भी अनुकूल लगें उन पर, करता अभिमान निरंतर ही॥**
**जड़ पर झुक-झुक जाता चेतन, की मार्दव की खण्डित काया।**
**निज शाश्वत अक्षय-निधि पाने, अब दास चरणरज में आया॥**

ॐ ह्रीं श्रीदेवशास्त्रगुरुभ्योऽक्षयपद-प्राप्तये अक्षतान् नि. स्वाहा।

**यह पुष्प सुकोमल कितना है, तन में माया कुछ शेष नहीं।**
**निज अन्तर का प्रभु! भेद कहूँ, उसमें ऋजुता का लेश नहीं॥**
**चिंतन कुछ फिर सम्भाषण कुछ, क्रिया कुछ की कुछ होती है।**
**स्थिरता निज में पाऊँ प्रभु, जो अन्तर का कालुष धोती है॥**

ॐ ह्रीं श्रीदेवशास्त्रगुरुभ्यः कामबाण-विनाशनाय पुष्पं नि. स्वाहा।

**अब तक अगणित जड़ द्रव्यों से, प्रभु! भूख न मेरी शांत हुई।**
**तृष्णा की खाई खूब भरी पर रिक्त रही वह रिक्त रही॥**
**युग युग से इच्छासागर में प्रभु! गोते खाता आया हूँ।**
**पंचेन्द्रिय मन के षट्-रस तज, अनुपम रस पीने आया हूं॥**

ॐ ह्रीं श्रीदेवशास्त्रगुरुभ्यः क्षुधारोग-विनाशनाय नैवेद्यं नि. स्वाहा।

**जग के जड़ दीपक को अब तक, समझा था मैंने उजियारा।**
**झंझा के एक झकोरे में जो बनता घोर तिमिर कारा॥**
**अतएव प्रभो! यह नश्वर दीप, समर्पण करने आया हूँ।**
**तेरी अन्तर लौ से निज अन्तर-दीप जलाने आया हूँ॥**

ॐ ह्रीं श्रीदेवशास्त्रगुरुभ्यो मोहान्धकार-विनाशनाय दीपं नि. स्वाहा।

जड़ कर्म घुमाता है मुझको यह मिथ्या भ्रांति रही मेरी।
मैं राग-द्वेष किया करता, जब परिणति होती जड़ केरी॥
यों भाव-करम या भाव-मरण, युग-युग से करता आया हूँ।
निज अनुपम गंध अनल से प्रभु पर गंध जलाने आया हूँ॥

ॐ ह्रीं श्रीदेवशास्त्रगुरुभ्योऽष्ट-कर्म-विनाशनाय धूपं नि. स्वाहा॥

जग में जिसको निज कहता मैं, वह छोड़ मुझे चल देता है।
मैं आकुल व्याकुल हो लेता, व्याकुल का फल व्याकुलता है॥
मैं शांत निराकुल चेतन हूँ, है मुक्तिरमा सहचर मेरी।
यह मोह तड़ककर टूट पड़े, प्रभु सार्थक फल पूजा तेरी॥

ॐ ह्रीं श्रीदेवशास्त्रगुरुभ्यो मोक्ष-फल-प्राप्तये फलं नि. स्वाहा॥

क्षणभर निजरस को पी चेतन, मिथ्यामल को धो देता है।
काषायिक भाव विनष्ट किये, निज आनन्द अमृत पीता है॥
अनुपम सुख तब विलसित होता, केवल रवि जगमग करता है।
दर्शन बल पूर्ण प्रकट होता, यह ही अर्हन्त अवस्था है॥
यह अर्घ्य समर्पण करके प्रभु, निजगुण का अर्घ्य बनाऊँगा।
और निश्चित तेरे सदृश प्रभु! अर्हन्त अवस्था पाऊँगा॥

ॐ ह्रीं श्रीदेवशास्त्रगुरुभ्योऽनर्घपदप्राप्तये अर्घम् नि. स्वाहा॥

## स्तवन

भव वन में जी भर घूम चुका, कण-कण को जी भर-भर देखा।
मृग-सम मृग-तृष्णा के पीछे, मुझको न मिली सुख की रेखा॥

झूठे जग के सपने सारे, झूठी मन की सब आशायें।
तन-जीवन-यौवन अस्थिर है, क्षण भंगुर पल में मुरझायें॥
सम्राट महाबल सेनानी, उस क्षण को टाल सकेगा क्या।
अशरण मृतकाया में हर्षित, निज जीवन डाल सकेगा क्या॥
संसार महादुख सागर के प्रभु दुःखमय सुख-आभासों में।
मुझको न मिला सुख क्षणभर भी, कंचन-कामिनि-प्रासादों में॥
मैं एकाकी एकत्व लिये, एकत्व लिये सब ही आते।
तन धन को साथी समझा था, पर ये भी छोड़ चले जाते॥
मेरे न हुए ये मैं इनसे, अति भिन्न अखंड निराला हूँ।
निज में पर से अन्यत्व लिये, निज सम रस पीने वाला हूँ॥
जिसके शृंगारों में मेरा, यह महंगा जीवन घुल जाता।
अत्यन्त अशुचि जड़ काया से, इस चेतन का कैसा नाता॥
दिनरात शुभाशुभ भावों से मेरा व्यापार चला करता।
मानस वाणी और काया से, आस्रव का द्वार खुला रहता॥
शुभ और अशुभ की ज्वाला से, झुलसा है मेरा अन्तस्तल।
शीतल समकित किरणें फूटें, संवर से जागे अन्तर्बल॥
फिर तप की शोधक वह्नि जगे, कर्मों की कड़ियाँ टूट पड़ें।
सर्वांग निजात्म प्रदेशों से, अमृत के निर्झर फूट पड़ें॥
हम छोड़ चलें यह लोक तभी, लोकान्त विराजें क्षण में जा।
निजलोक हमारा वासा हो, शोकान्त बनें फिर हमको क्या॥

जागे मम दुर्लभ बोधि प्रभो! दुर्नयतम सत्वर टल जावे।
बस ज्ञाता दृष्टा रह जाऊं, मद-मत्सर-मोह विनश जावे॥

चिर रक्षक धर्म हमारा हो, हो धर्म हमारा चिर साथी।
जग में न हमारा कोई था, हम भी न रहें जग के साथी॥

चरणों में आया हूँ प्रभुवर! शीतलता मुझको मिल जावे।
मुरझाई ज्ञान-लता मेरी, निज अन्तर्बल से खिल जावे॥

सोचा करता हूँ भोगों से, बुझ जावेगी इच्छा ज्वाला।
परिणाम निकलता है लेकिन, मानो पावक में घी डाला॥

तेरे चरणों की पूजा से, इन्द्रिय सुख की ही अभिलाषा।
अब तक न समझ ही पाया प्रभु! सच्चे सुख की भी परिभाषा॥

तुम तो अविकारी हो प्रभुवर! जग में रहते जग से न्यारे।
अतएव झुके तब चरणों में, जग के माणिक मोती सारे॥

स्याद्वाद मयी तेरी वाणी, शुभनय के झरने झरते हैं।
उस पावन नौका पर लाखों प्राणी भव-वारिधि तिरते हैं॥

हे गुरुवर! शाश्वत सुख-दर्शक यह नग्न स्वरूप तुम्हारा है।
जग की नश्वरता का सच्चा, दिग्दर्श कराने वाला है॥

जब जग विषयों में रच पचकर गाफिल निद्रा में सोता हो।
अथवा वह शिव के निष्कंटक, पथ में विष-कंटक बोता हो॥

हो अर्द्ध निशा का सन्नाटा, वन में वनचारी चरते हों।
तब शान्त निराकुल मानस तुम, तत्वों का चिन्तन करते हों॥

करते तप शैल नदी तट पर, तरु तल वर्षा की झड़ियों में।
समता रसपान किया करते, सुख-दुःख दोनों ही घड़ियों में॥
अन्तर ज्वाला हरती वाणी, मानो झड़ती हों फुलझड़ियाँ।
भव बन्धन तड़-तड़ टूट पड़ें, खिल जावें अन्तर की कलियाँ॥
तुम सा दानी क्या कोई हो, जग को दे दीं जग की निधियाँ।
दिन-रात लुटाया करते हो, सम-शम की अविनश्वर मणियाँ॥

हे निर्मल देव! तुम्हें प्रणाम,
हे ज्ञान दीप आगम! प्रणाम।
हे शान्ति त्याग के मूर्तिमान,
शिव पथ-पंथी गुरुवर! प्रणाम॥

ॐ ह्रीं श्री देवशास्त्रगुरुभ्योऽनर्घपद-प्राप्तये अर्घं नि. स्वाहा।

●

## नवदेवता पूजा

### (गीता छन्द)

**अरिहंत सिद्धाचार्य पाठक, साधु त्रिभुवन वंद्य हैं।**
**जिनधर्म जिन आगम जिनेश्वरमूर्ति जिनगृह वंद्य हैं॥**
**नव देवता ये मान्य जग में, हम सदा अर्चा करें।**
**आह्वान कर थापे यहां मन में अतुल श्रद्धा धरें॥**

ॐ ह्रीं अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायसर्वसाधुजिनधर्म-जिनागम-जिनचैत्य-चैत्यालय समूह अत्र अवतर अवतर संवौषट्। अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः। अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्।

**गंगा नदी का नीर निर्मल, बाह्य मल धोवे सदा।**
**अंतर मलों के क्षालने को नीर से पूजूँ मुदा॥**
**नवदेवताओं की सदा जो भक्ति से अर्चा करें।**
**सब सिद्धि नवनिधि ऋद्धि मंगल पाय शिवकांता वरें॥1॥**

ॐ ह्रीं अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायसर्वसाधु-जिनधर्म-जिनागम-जिनचैत्य-चैत्यालयेभ्यो जन्मजरामृत्यु विनाशनाय जलं नि. स्वाहा।

**कर्पूर मिश्रित गंध चंदन देह, ताप निवारता।**
**तुम पाद पंकज पूजते, मन ताप तुरतहिं वारता॥नव.॥**

ॐ ह्रीं नवदेवेभ्यः संसारताप विनाशनाय चन्दनं नि. स्वाहा।

**क्षीरोदधी के फेन सम सित तंदुलों को लायके।**
**उत्तम अखंडित सौख्य हेतु, पुंज नव सुचढ़ाय के॥नव.॥**

ॐ ह्रीं नवदेवेभ्योऽक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् नि. स्वाहा।

**चंपा चमेली केवड़ा, नाना सुगंधित ले लिये।**
**भव के विजेता आपको, पूजत सुमन अर्पण किये ॥नव.॥**

ॐ ह्रीं नवदेवेभ्यः कामबाण-विनाशनाय पुष्पं नि. स्वाहा।

**पायस मधुर पकवान मोदक, आदि को भर थाल में।**
**निज आत्म अमृत सौख्य हेतु पूजहूँ नत भाल मैं ॥नव.॥**

ॐ ह्रीं नवदेवेभ्यः क्षुधारोग-विनाशनाय नैवेद्यं नि. स्वाहा।

**कर्पूर ज्योति जगमगे, दीपक लिया निज हाथ में।**
**तुम आरती तम वारती, पाऊँ सुज्ञान प्रकाश मैं ॥नव.॥**

ॐ ह्रीं नवदेवेभ्यो मोहान्धकार-विनाशनाय दीपं नि. स्वाहा।

**दश गंध धूप अनूप सुरभित, अग्नि में खेऊँ सदा।**
**निज आत्मगुण सौरभ उठे, हों कर्म सब मुझसे विदा ॥नव.॥**

ॐ ह्रीं नवदेवेभ्योऽष्टकर्मदहनाय धूपं नि. स्वाहा।

**अंगूर अमरख आम्र अमृत, फल भराऊँ थाल में।**
**उत्तम अनुपम मोक्ष फल के, हेतु पूजूँ आज मैं ॥नव.॥**

ॐ ह्रीं नवदेवेभ्यो मोक्षफलप्राप्तये फलं नि. स्वाहा।

**जल गंध अक्षत पुष्प चरु, दीपक सुधूप फलार्घ्य ले।**
**वर रत्नत्रय निधि लाभ यह, बस अर्घ्य से पूजत मिले ॥नव.॥**

ॐ ह्रीं नवदेवेभ्यो अनर्घपदप्राप्तये अर्घ्यं नि. स्वाहा।

**जलधारा से नित्य मैं, जग की शांति हेतु।**
**नवदेवों को पूजहूँ, श्रद्धा भक्ति समेत ॥**

(शांतये शांतिधारा)

**नानाविध के सुमन ले, मन में बहु हरषाय।**
**मैं पूजूँ नवदेवता, पुष्पाञ्जलि चढ़ाय॥**

(पुष्पाञ्जलि)

**(जाप्य)**

ॐ ह्रीं अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्याय-सर्वसाधु-जिनधर्म-जिनागम-जिनचैत्य-चैत्यालयेभ्यो नमः। (9, 27, 108 बार)

## जयमाला

**चिञ्चितामणिरत्न, तीन लोक में श्रेष्ठ हो।**
**गाऊँ गुणमणिमाल, जयवंते वर्तो सदा॥1॥**

चाल–हे दीनबंधु श्रीपति.....

**जय जय श्री अरिहंत देवदेव हमारे।**
**जय घातिया को घात सकल जंतु उबारे॥**
**जय जय प्रसिद्ध सिद्ध की मैं वंदना करूँ।**
**जय अष्ट कर्ममुक्त की मैं अर्चना करूँ॥2॥**
**आचार्य देव गुण छत्तीस धार रहे हैं।**
**दीक्षादि दे असंख्य भव्य तार रहे हैं॥**
**जैवंत उपाध्याय गुरु ज्ञान के धनी।**
**सन्मार्ग के उपदेश की वर्षा करें घनी॥3॥**
**जय साधु अठाईस गुणों को धरें सदा।**
**निज आत्मा की साधना से च्युत न हों कदा॥**
**ये पंच परम देव सदा वंद्य हमारे।**
**संसार विषम सिंधु से हमको भी उबारें॥4॥**

**जिनधर्म चक्र सर्वदा चलता ही रहेगा।**
**जो इसकी शरण ले वो सुलझता ही रहेगा॥**
**जिन की ध्वनि पियूष का जो पान करेंगे।**
**भव रोग दूर कर वे मुक्ति कांत बनेंगे॥5॥**
**जिन चैत्य की जो वंदना त्रिकाल करे हैं।**
**वे चित्‌स्वरूप नित्य आत्मलाभ करे हैं॥**
**कृत्रिम व अकृत्रिम जिनालयों को जो भजें।**
**वे कर्मशत्रु जीत शिवालय में जा बसें॥6॥**
**नव देवताओं की जो नित आराधना करें।**
**वे मृत्युराज की भी तो विराधना करें॥**
**मैं कर्मशत्रु जीतने के हेतु ही जजूँ।**
**संपूर्ण 'ज्ञानमती' सिद्धि हेतु ही भजूँ॥7॥**
**नवदेवों को भक्ति वश, कोटि कोटि प्रणाम।**
**भक्ति का फल मैं चहूँ, निजपद में विश्राम॥8॥**

ॐ ह्रीं अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायसर्वसाधुजिनधर्मजिनागमजिनचैत्य-चैत्यालयेभ्यो जयमाला अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

शांतिधारा, पुष्पाञ्जलिं क्षिपामि

**जो भव्य श्रद्धा भक्ति से नव देवता पूजा करें।**
**वे सब अमंगल दोष हर, सुख शांति में झूला करें।**
**नवनिधि अतुल भंडार लें, फिर मोक्ष सुख भी पावते।**
**सुखसिंधु में हो मग्न फिर, यहाँ पर कभी न आवते॥9॥**

इत्याशीर्वादः पुष्पाञ्जलिं क्षिपामि

●

# समुच्चय पूजा

**देव शास्त्र गुरु नमन करि, बीस तीर्थंकर ध्याय।**
**सिद्ध शुद्ध राजत सदा, नमूं चित्त हुलसाय॥**

ॐ ह्रीं श्री देवशास्त्र गुरु समूह। श्रीविद्यमान-विंशति-तीर्थंकर-समूह। श्रीअनंतानंत सिद्ध-परमेष्ठी समूह। अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वाननम्॥ अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनम्। अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधिकरणम्।

**अनादिकाल से जग में स्वामिन्, जल से शुचिता को माना।**
**शुद्ध निजातम सम्यक् रत्नत्रय, निधि को नहिं पहिचाना॥**
**अब निर्मल रत्नत्रय जल ले, श्री देव शास्त्र गुरु को ध्याऊँ।**
**विद्यमान श्री बीस तीर्थंकर, सिद्ध प्रभुजी के गुण गाऊँ॥**

ॐ ह्रीं देव-शास्त्र-गुरुभ्यः, श्रीविद्यमान-विंशति-तीर्थंकरेभ्यः, श्रीअनन्तानंत सिद्ध-परमेष्ठिभ्यो, जन्मजरा-मृत्यु-विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा॥1॥

**भव आताप मिटावन की, निज में ही क्षमता समता है।**
**अनजाने अब तक मैंने, पर में की झूंठी ममता है॥**
**चन्दन सम शीतलता पाने, श्री देव शास्त्र गुरु को ध्याऊँ।**
**विद्यमान श्री बीस तीर्थंकर, सिद्ध प्रभुजी के गुण गाऊँ॥**

ॐ ह्रीं देव-शास्त्र-गुरुभ्यः, श्रीविद्यमान-विंशति-तीर्थंकरेभ्यः, श्रीअनन्तानंत-सिद्ध-परमेष्ठिभ्यः, संसारताप-विनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा॥2॥

**अक्षय पद बिन फिरा जगत की लख चौरासी योनी में।**
**अष्ट कर्म के नाश करन को, अक्षत तुम ढिंग लाया मैं॥**
**अक्षय निधि निज की पाने, श्री देव शास्त्र गुरु को ध्याऊँ।**
**विद्यमान श्री बीस तीर्थंकर, सिद्ध प्रभुजी के गुण गाऊँ॥**

ॐ ह्रीं देव-शास्त्र-गुरुभ्यः, श्रीविद्यमान-विंशति-तीर्थंकरेभ्यः, श्रीअनन्तानंत सिद्ध-परमेष्ठिभ्योऽक्षयपद-प्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा ॥3॥

**पुष्प सुगन्धी से आतम ने, शील स्वभाव नशाया है।**
**मन्मथ बाणों से बिंध करके, चहुँ गति दुःख उपजाया है॥**
**स्थिरता निज में पाने को, श्री देव शास्त्र गुरु को ध्याऊँ।**
**विद्यमान श्री बीस तीर्थंकर, सिद्ध प्रभुजी के गुण गाऊँ॥**

ॐ ह्रीं देव-शास्त्र-गुरुभ्यः, श्रीविद्यमान-विंशति-तीर्थंकरेभ्यः, श्रीअनन्तानंत सिद्ध-परमेष्ठिभ्यः कामबाण-विध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा ॥4॥

**षट् रस मिश्रित भोजन से, ये भूख न मेरी शान्त हुई।**
**आतम रस अनुपम चखने से, इन्द्रिय मन इच्छा शमन हुई॥**
**सर्वथा भूख के मेटन को, श्री देव शास्त्र गुरु को ध्याऊँ।**
**विद्यमान श्री बीस तीर्थंकर, सिद्ध प्रभुजी के गुण गाऊँ॥**

ॐ ह्रीं देव-शास्त्र-गुरुभ्यः, श्रीविद्यमान-विंशति-तीर्थंकरेभ्यः, श्रीअनन्तानंत सिद्ध-परमेष्ठिभ्यः क्षुधारोग-विनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥5॥

**जड़ दीप विनश्वर को अबतक, समझा था मैंने उजियारा।**
**निज गुण दरशायक ज्ञान दीप से, मिटा मोह का अंधियारा॥**
**ये दीप समर्पित करके मैं, श्री देव शास्त्र गुरु को ध्याऊँ।**
**विद्यमान श्री बीस तीर्थंकर, सिद्ध प्रभुजी के गुण गाऊँ॥**

ॐ ह्रीं देव-शास्त्र-गुरुभ्यः, श्रीविद्यमान-विंशति-तीर्थंकरेभ्यः, श्रीअनन्तानंत-सिद्ध-परमेष्ठिभ्यो, मोहान्धकार-विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा ॥6॥

**ये धूप अनल में खेने से, कर्मों को नहीं जलायेगी।**
**निज में निज की शक्ति ज्वाला, जो राग द्वेष नशायेगी ॥**
**उस शक्ति दहन प्रगटाने को, श्री देव शास्त्र गुरु को ध्याऊँ।**
**विद्यमान श्री बीस तीर्थंकर, सिद्ध प्रभुजी के गुण गाऊँ ॥**

ॐ ह्रीं देव-शास्त्र-गुरुभ्यः, श्रीविद्यमान-विंशति-तीर्थंकरेभ्यः, श्रीअनन्तानंत सिद्ध-परमेष्ठिभ्योऽष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा ॥7॥

**पिस्ता बदाम श्रीफल लवंग, चरणन तुम ढिंग मैं ले आया।**
**आतमरस भीने निज गुण फल, मम मन अब उनमें ललचाया ॥**
**अब मोक्ष महाफल पाने को, श्री देव शास्त्र गुरु को ध्याऊँ।**
**विद्यमान श्री बीस तीर्थंकर, सिद्ध प्रभुजी के गुण गाऊँ ॥**

ॐ ह्रीं देव-शास्त्र-गुरुभ्यः, श्रीविद्यमान-विंशति-तीर्थंकरेभ्यः, श्रीअनन्तानंत सिद्ध-परमेष्ठिभ्यो, मोक्षफल-प्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा ॥8॥

**अष्टम वसुधा पाने को, कर में ये आठों द्रव्य लिये।**
**सहज शुद्ध स्वाभाविकता से, निज में निजगुण प्रगट किये ॥**
**ये अर्घ समर्पण करके मैं, श्री देव शास्त्र गुरु को ध्याऊँ।**
**विद्यमान श्री बीस तीर्थंकर, सिद्ध प्रभुजी के गुण गाऊँ।**

ॐ ह्रीं देव-शास्त्र-गुरुभ्यः, श्रीविद्यमान-विंशति-तीर्थंकरेभ्यः, श्रीअनन्तानंत सिद्ध-परमेष्ठिभ्योऽनर्घ्यपद-प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥9॥

## जयमाला

देव शास्त्र गुरु बीस तीर्थंकर, सिद्ध प्रभु भगवान।
अब वरणूँ जयमालिका, करुँ स्तवन गुणगान॥

नसे घातिया कर्म अर्हंत देवा, करें सुरअसुर नरमुनि नित्य सेवा।
दरश ज्ञान सुखबल अनंत के स्वामी, छियालीस गुणयुक्त महाईशनामी॥

तेरी दिव्य वाणी सदा भव्य मानी, महा मोह विध्वंसिनी मोक्षदानी।
अनेकान्त मय द्वादशांगी, बखानी, नमों लोक माता श्री जैन वाणी॥

विरागी अचारज उवज्झाय साधू, दरश ज्ञान भण्डार समता अराधू।
नगन वेशधारीसु एका विहारी, निजानन्द मंडित मुकति पथ प्रचारी॥

विदेह क्षेत्र में तीर्थंकर बीस राजे, विहरमान वन्दू सभी पाप भाजे।
नमूँ सिद्ध निर्भय निरामय सुधामी, अनाकुल समाधान सहजाभिरामी।

देव शास्त्र गुरु बीस तीर्थंकर, सिद्ध हृदय बिच धरले रे।
पूजन ध्यान गान गुण करके, भव सागर जिय तरले रे॥

ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरु समूह, विद्यमान-विंशति-तीर्थंकर, अनंतानंत-सिद्ध परमेष्ठिभ्यो जयमाला पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

॥ इत्याशीर्वादः पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत् ॥

●

## कृत्रिम-अकृत्रिम चैत्यालय अर्घ

**भूत भविष्यत वर्तमान की, तीस चौबीसी मैं ध्याऊँ।**
**चैत्य चैत्यालय कृत्रिमाकृत्रिम, तीन लोक के मन लाऊँ॥**

ॐ ह्रीं त्रिकाल सम्बन्धि विंशत्यधिक-सप्तशत तीर्थङ्करेः त्रिलोक सम्बन्धि कृत्रिमा-कृत्रिम चैत्यालयेभ्यो अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

**चैत्य भक्ति आलोचन चाहूँ, कायोत्सर्ग अघ नाशन हेत।**
**कृत्रिमा-कृत्रिम तीन लोक में, राजत हैं जिन बिम्ब अनेक।**
**चतुर निकाय के देव जजें, ले अष्ट द्रव्य निज भक्ति समेत।**
**निज शक्ति अनुसार जजूँ, मैं कर समाधि पाऊं शिव खेत।**

ॐ ह्रीं कृत्रिमाकृत्रिम-चैत्यालय-सम्बन्धी-जिनबिम्बेभ्यो अर्घं निर्वपामीति स्वाहा।

**पूर्व मध्य अपराह्न की बेला, पूर्वाचार्यों के अनुसार।**
**देव वन्दना करूँ भाव से, सकल कर्म की नाशन हार॥**
**पंच महागुरु सुमरन करके, कायोत्सर्ग करूँ सुखकार।**
**सहज स्वभाव शुद्ध लख अपना, जाऊँगा अब मैं भव पार॥**

**॥ पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत् ॥**

●

# पंचपरमेष्ठी पूजा

**अर्हन्त सिद्ध आचार्य नमन, हे उपाध्याय हे साधु नमन।**
**जय पंच परम परमेष्ठी जय, भवसागर तारण हार नमन॥**
**मन-वच-काया पूर्वक करता हूँ, शुद्ध हृदय से आह्वानन।**
**मम हृदय विराजो तिष्ठ तिष्ठ, सन्निकट होहु मेरे भगवन॥**
**निज आत्मतत्त्व की प्राप्ति हेतु, ले अष्ट द्रव्य करता पूजन।**
**तव चरणों की पूजन से प्रभु, निज सिद्ध रूप का हो दर्शन॥**

ॐ ह्रीं अरहन्त-सिद्ध-आचार्य-उपाध्यायसर्वसाधुपञ्चपरमेष्ठिन्! अत्र अवतर अवतर संवौषट्। अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः। अत्र सम सन्निहितो भव भव वषट्।

**मैं तो अनादि से रोगी हूँ उपचार कराने आया हूँ।**
**तुम सम उज्ज्वलता पाने को, उज्ज्वल जल भरकर लाया हूँ॥**
**मैं जन्म-जरा मृत्यु नाश करूँ ऐसी दो शक्ति हृदय स्वामी।**
**हे पंच परम परमेष्ठी प्रभु, भव-दुख मेटो अन्तर्यामी॥**

ॐ ह्रीं पञ्चपरमेष्ठिभ्योजन्मजरामृत्यु विनाशनाय जलं नि. स्वाहा।

**संसार ताप में जल-जल कर मैंने अगणित दुःख पाये हैं।**
**निज शान्त स्वभाव नहीं भाया, पर के ही गीत सुहाए हैं॥**
**शीतल चंदन है भेंट तुम्हें, संसार ताप नाशो स्वामी।**
**हे पंच परम परमेष्ठी प्रभु, भव-दुख मेटो अन्तर्यामी॥**

ॐ ह्रीं पञ्चपरमेष्ठिभ्यःसंसारताप विनाशनाय चन्दनं नि. स्वाहा।

**दुःख मय अथाह भव सागर में, मेरी यह नौका भटक रही।**
**शुभ अशुभ भाव की भंवरों में, चैतन्यशक्ति निज अटक रही ॥**
**तन्दुल हैं धवल तुम्हें अर्पित, अक्षय पद प्राप्त करूँ स्वामी।**
**हे पंच परम परमेष्ठी प्रभु, भव-दुख मेटो अन्तर्यामी ॥**

ॐ ह्रीं पञ्चपरमेष्ठिभ्योऽक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् नि. स्वाहा।

**मैं काम व्यथा से घायल हूँ, सुखकी न मिली किंचित् छाया।**
**चरणों में पुष्प चढ़ाता हूँ, तुम को पाकर मन हर्षाया ॥**
**मैं काम भाव विध्वंस करूँ, ऐसा दो शील हृदय स्वामी।**
**हे पंच परम परमेष्ठी प्रभु, भव-दुख मेटो अन्तर्यामी ॥**

ॐ ह्रीं पञ्चपरमेष्ठिभ्यः कामबाण विध्वंसनाय पुष्पं नि. स्वाहा।

**मैं क्षुधा रोग से व्याकुल हूँ, चारों गति में भरमाया हूँ।**
**जग के सारे पदार्थ पाकर भी, तृप्त नहीं हो पाया हूँ ॥**
**नैवेद्य समर्पित करता हूँ, यह क्षुधा रोग मेटो स्वामी।**
**हे पंच परम परमेष्ठी प्रभु, भव-दुख मेटो अन्तर्यामी ॥**

ॐ ह्रीं पञ्चपरमेष्ठिभ्यःक्षुधारोग विनाशनाय नैवेद्यं नि. स्वाहा।

**मोहान्ध महा-अज्ञानी मैं, निज को पर का कर्ता माना।**
**मिथ्यातम के कारण मैंने, निज आत्मस्वरूप न पहचाना ॥**
**मैं दीप समर्पण करता हूँ, मोहान्धकार क्षय हो स्वामी।**
**हे पंचपरम परमेष्ठी प्रभु, भव-दुख मेटो अन्तर्यामी ॥**

ॐ ह्रीं पञ्चपरमेष्ठिभ्यो मोहान्धकार विनाशनाय दीपं नि. स्वाहा।

कर्मों की ज्वाला धधक रही, संसार बढ़ रहा है प्रतिपल।
संवर से आस्रव को रोकूँ, निर्जरा सुरभि महके पल-पल॥
मैं धूप चढ़ाकर अब आठों, कर्मों का हनन करूँ स्वामी।
हे पंचपरम परमेष्ठी प्रभु, भव-दुख मेटो अन्तर्यामी॥

ॐ ह्रीं पञ्चपरमेष्ठिभ्योऽष्टकर्मदहनाय धूपं नि. स्वाहा।

निज आत्मतत्त्व का मनन करूँ चिंतवन करूँ निज चेतन का।
दो श्रद्धा ज्ञान-चरित्र श्रेष्ठ, सच्चा पथ मोक्ष निकेतन का॥
उत्तम फल चरण चढ़ाता हूँ, निर्वाण महाफल हो स्वामी।
हे पंचपरम परमेष्ठी प्रभु, भव-दुख मेटो अन्तर्यामी॥

ॐ ह्रीं पञ्चपरमेष्ठिभ्यो मोक्षफलप्राप्तये फलं नि. स्वाहा।

जल चन्दन अक्षत पुष्प दीप, नैवेद्य धूप फल लाया हूँ।
अब तक के संचित कर्मों का, मैं पुंज जलाने आया हूँ॥
यह अर्घ समर्पित करता हूँ, अविचल अनर्घ पद दो स्वामी।
हे पंच परम परमेष्ठी प्रभु, भव-दुख मेटो अन्तर्यामी॥

ॐ ह्रीं पञ्चपरमेष्ठिभ्योऽनर्घपदप्राप्तये अर्घं नि. स्वाहा।

## जयमाला

जय वीतराग सर्वज्ञ प्रभो, निज ध्यान लीन गुणमय अपार।
अष्टादश दोष रहित जिनवर, अर्हन्त देव को नमस्कार॥
अविकल अविकारी अविनाशी, निजरूप निरंजन निराकार।
जय अजय अमर हे मुक्तिकंत, भगवंत सिद्ध को नमस्कार॥
छत्तीस सुगुण से तुम मंडित, निश्चत रत्नत्रय हृदय धार।

**हे मुक्ति वधू के अनुरागी, आचार्य सुगुरु के नमस्कार॥**
**एकादश अंग पूर्व चौदह के, पाठी गुण पच्चीस धार।**
**बाह्याभ्यन्तर मुनि मुद्रा महान्, श्री उपाध्याय को नमस्कार॥**
**व्रत समिति गुप्ति चारित्र प्रबल, वैराग्य भावना हृदय धार।**
**हे द्रव्य-भाव संयम मय मुनिवर, सर्वसाधु को नमस्कार॥**
**बहुपुण्य संयोग मिला नरतन, जिनश्रुत जिनदेव चरणदर्शन।**
**हो सम्यग्दर्शन प्राप्त मुझे, तो सफल बने मानव जीवन॥**
**निज-पर भेद जानकर मैं, निज को ही निज में लीन करूँ।**
**अब भेद ज्ञान के द्वारा मैं, निज आत्म स्वयं स्वाधीन करूँ॥**
**निज में रत्नत्रय धारण कर, निज परिणति को ही पहचानूँ।**
**पर-परणति से हो विमुख सदा, निज ज्ञानतत्त्व को ही जानूँ॥**
**जब ज्ञान-ज्ञेय-ज्ञाता विकल्प तज, शुक्लध्यान मैं ध्याऊँगा।**
**तब चार घातिया क्षय करके, अर्हन्त महापद पाऊँगा॥**
**है निश्चित सिद्ध स्वपद मेरा, हे प्रभु कब इसको पाऊँगा।**
**सम्यक् पूजा फल पाने को, अब निज स्वभाव में आऊँगा॥**
**अपने स्वरूप की प्राप्ति हेतु, हे प्रभु मैंने की है पूजन।**
**तब तक चरणों में ध्यान रहे, जब तक न प्राप्त हो मुक्ति सदन॥**

ॐ ह्रीं श्रीअर्हत्-सिद्ध-आचार्य-उपाध्याय सर्वसाधु-पञ्चपरमेष्ठिभ्यो अनर्घ पद प्राप्तये महार्घं नि. स्वाहा

**हे मंगल रूप अमंगल हर, मंगलमय मंगल गान करूँ।**
**मंगल में प्रथम श्रेष्ठ मंगल, नवकार मंत्र का ध्यान करूँ॥**

॥ इत्याशीर्वादः पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्॥

## सिद्ध-पूजा (संस्कृत)

**आचार्य पद्मनन्दि**

**ऊर्ध्वाधोरयुतं सबिन्दु सपरं ब्रह्म-स्वरावेष्टितम् ।**
**वर्गापूरित-दिग्गताम्बुज-दलं तत्संधि-तत्त्वान्वितम् ॥**
**अंतःपत्र-तटेष्वनाहत-युतं ह्रींकार-संवेष्टितम् ।**
**देवं ध्यायति यः स मुक्तिसुभगो वैरीभ-कण्ठीरवः ॥ 1 ॥**

ॐ ह्रीं श्री सिद्धचक्राधिपते! सिद्धपरमेष्ठिन्।
अत्र अवतर अवतर संवौषट् (आह्वानम्)।
ॐ ह्रीं... अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठःठः (स्थापनम्)।
ॐ ह्रीं... अत्र मम सन्निहितो भव वषट् (सन्निधिकरणम्)।

**निरस्तकर्म-सम्बन्धं सूक्ष्मं नित्यं निरामयम् ।**
**वन्देऽहं परमात्मानममूर्त्तमनुपद्रवम् ॥ 2 ॥**
**(पुष्पांजलिं क्षिपेत्)**

**सिद्धौ निवासमनुगं परमात्म-गम्यम् ।**
**हान्यादिभावरहितं भव-वीत-कायम् ॥**
**रेवापगा-वर-सरो-यमुनोद्भवानाम् ।**
**नीरैर्यजे कलशगैर्वर-सिद्ध-चक्रम् ॥ 3 ॥**

*सोरठा-* मोहि तृषा दुःख देत, सो तुमने जीती प्रभू।
जल से पूजूँ मैं तोय, मेरो रोग निवारियो ॥

ॐ ह्रीं श्री सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने
जन्म-जरा-मृत्यु-विनाशनाय जलं निर्व. स्वाहा।

**आनंद-कंद जनकं घन-कर्म-मुक्तम् ।**
**सम्यक्त्व-शर्म-गरिमं जननार्तिवीतम् ॥**
**सौरभ्य-वासित-भुवं हरि-चंदनानाम् ।**
**गन्धैर्यजे परिमलैर्वर-सिद्ध-चक्रम् ॥ 4 ॥**

*सोरठा-* हम भव-आतप माँहिं, तुम न्यारे संसार से।
कीज्यो शीतल छाँह, चंदन से पूजा करूँ॥

ॐ ह्रीं श्री सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने
संसारतापविनाशनाय चंदनं निर्व. स्वाहा।

**सर्वावगाहन-गुणं सुसमाधि-निष्ठम् ।**
**सिद्धं स्वरूप-निपुणं कमलं विशालम् ॥**
**सौगन्ध्य-शालि-वनशालि-वराक्षतानाम् ।**
**पुंजैर्यजे-शशिनिभैर्वर-सिद्ध-चक्रम् ॥ 5 ॥**

*सोरठा-* हम-अवगुण समुदाय, तुम अक्षयगुण के भरे।
पूजूँ अक्षत ल्याय, दोष-नाश गुण कीजियो ॥

ॐ ह्रीं श्री सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने
अक्षयपद-प्राप्तये अक्षतान् निर्व. स्वाहा।

**नित्यं स्वदेह-परिमाणमनादिसंज्ञम् ।**
**द्रव्यानपेक्षममृतं मरणाद्यतीतम् ॥**

**मंदार-कुंद-कमलादि-वनस्पतीनाम् ।**
**पुष्पैर्यजे शुभतमैर्वर-सिद्ध-चक्रम् ॥ 6 ॥**

*सोरठा-* काम-अग्नि है मोहि, निश्चय शील-स्वभाव तुम।
फूल चढ़ाऊँ मैं तोय, मेरो रोग निवारियो ॥

ॐ ह्रीं श्री सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने
कामबाण-विध्वंसनाय पुष्पं निर्व. स्वाहा।

**ऊर्ध्व-स्वभाव-गमनं सुमनो-व्यपेतम् ।**
**ब्रह्मादि-बीज-सहितं गगनावभासम् ॥**
**क्षीरान्न-साज्य-वटकै रसपूर्णगर्भै-**
**र्नित्यं यजे चरुवरैर्वर-सिद्ध-चक्रम् ॥ 7 ॥**

*सोरठा-* मोहि क्षुधा दुःख देत, ध्यान-खड्ग करि तुम हती।
मेरी बाधा चूर, नेवज से पूजा करूँ ॥

ॐ ह्रीं श्री सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने
क्षुधारोग-विनाशनाय नैवेद्यं निर्व. स्वाहा ॥

**आतंक-शोक-भय-रोग-मद-प्रशान्तम् ।**
**निर्द्वन्द्व-भाव-धरणं महिमा-निवेशम् ॥**
**कर्पूर-वर्ति-बहुभिः करकावदातै-**
**र्दीपैर्यजे रुचिवरैर्वर-सिद्ध-चक्रम् ॥ 8 ॥**

*सोरठा-* मोह-तिमिर हम पास, तुम पै चेतन-ज्योति है।
पूजौ दीप-प्रकाश, मेरो तम निरवारियो ॥

ॐ ह्रीं श्री सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने
मोहांधकार-विनाशनाय दीपं निर्व. स्वाहा ॥

**पश्यन्समस्त-भुवनं युगपन्नितान्तम् ।**
**त्रैकाल्य-वस्तु-विषये निविड-प्रदीपम् ॥**
**सद्द्रव्यगन्ध-घनसार-विमिश्रितानाम् ।**
**धूपैर्यजे परिमलैर्वर-सिद्ध-चक्रम् ॥ 9 ॥**

*सोरठा-* अष्टकर्म-वन-जाल, मुक्ति-स्वामी सुख करो।
खेऊँ धूप रसाल, अष्ट-कर्म निरवारियो ॥
ॐ ह्रीं श्री सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने
अष्टकर्म-दहनाय धूपं निर्व. स्वाहा ॥

**सिद्धासुरादिपति-चक्ष-नरेन्द्रचक्रै-**
**र्ध्येयं शिवं सकल-भव्य-जनैः सुवन्द्यम् ॥**
**नारंगि-पूग-कदली-फल-नारिकेलैः ।**
**सोऽहं यजे वरफलैर्वर-सिद्ध-चक्रम् ॥ 10 ॥**

*सोरठा-* अन्तराय-दुःख टाल, तुम अनंत-थिरता लही।
पूजूँ फल दरशाय, विघ्न टाल शिवफल करो ॥
ॐ ह्रीं श्री सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने
मोक्षफल-प्राप्तये फलं निर्व. स्वाहा।

**गन्धाढ्यं सुपयो मधुव्रत-गणैः संगं वरं चन्दनम् ।**
**पुष्पौघं विमलं सदक्षत-चयं रम्यं चरुं दीपकम् ॥**

**धूपं गन्धयुतं ददामि विविधं श्रेष्ठं फलं लब्धये।**
**सिद्धानां युगपत्क्रमाय विमलं सेनोत्तरं वाञ्छितम् ॥ 11 ॥**

*सोरठा-* हममें आठ ही दोष, जजहुँ अर्घ ले सिद्ध जी।
दीजे वसु-गुण मोय, कर जोड़े सेवक खड़ा ॥

ॐ ह्रीं श्री सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने
अनर्घ्यपद-प्राप्तये अर्घ्यं निर्व. स्वाहा।

**ज्ञानोपयोगविमलं विशदात्मरूपम्।**
**सूक्ष्म-स्वभाव परमं यदनन्तवीर्यम् ॥**
**कर्मौघ-कक्ष-दहनं सुख-सस्यबीजम्।**
**वंदे सदा निरुपमं वर-सिद्धचक्रम् ॥ 12 ॥**

**कर्माष्टक-विनिर्मुक्तं मोक्ष-लक्ष्मी-निकेतनम्।**
**सम्यक्त्वादि-गुणोपेतं सिद्धचक्रं नमाम्यहम् ॥ 13 ॥**

ॐ ह्रीं श्री सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने
महार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

**त्रैलोक्येश्वर-वन्दनीय-चरणाः प्रापुः श्रियं शाश्वतीम्।**
**यानाराध्य निरुद्ध-चण्ड-मनस। सन्तोऽपि तीर्थंकराः ॥**
**सत्सम्यक्त्व-विबोध-वीर्य्य-विशदाव्याबाधताद्यैर्गुणै-**
**र्युक्तांस्तानिह तोष्टवीमि सततं सिद्धान् विशुद्धोदयान् ॥ 14 ॥**

**(पुष्पांजलिं छिपामि)**

●

## जयमाला

विराग सनातन शांत निरंश, निरामय निर्भय निर्मल हंस।
सुधाम विबोध-निधान विमोह, प्रसीद विशुद्ध सुसिद्ध-समूह॥
विदूरित-संसृति-भाव निरंग, समामृत-पूरित देव विसंग।
अबंध कषाय-विहीन विमोह, प्रसीद विशुद्ध सुसिद्ध-समूह॥
निवारित-दुष्कृतकर्म-विपाश, सदामल-केवल-केलि-निवास।
भवोदधि-पारग शांत विमोह, प्रसीद विशुद्ध सुसिद्ध-समूह॥
अनंत-सुखामृत-सागर-धीर, कलंक-रजो-मल-भूरि-समीर।
विखण्डित-काम विराम-विमोह, प्रसीद विशुद्ध सुसिद्ध-समूह॥
विकार-विवर्जित तर्जित-शोक, विबोध-सुनेत्र-विलोकित-लोक।
विहार विराव विरंग विमोह, प्रसीद विशुद्ध सुसिद्ध-समूह॥
रजोमल-खेद-विमुक्त विगात्र, निरंतर नित्य सुखामृत-पात्र।
सुदर्शन राजित नाथ विमोह, प्रसीद विशुद्ध सुसिद्ध-समूह॥
नरामर वंदित निर्मल-भाव, अनंत मुनीश्वर पूज्य विहाव।
सदोदय विश्व महेश विमोह, प्रसीद विशुद्ध सुसिद्ध-समूह॥
विदंभ वितृष्ण विदोष विनिद्र, परापर-शंकर सार वितंद्र।
विकोप विरूप विशंक विमोह, प्रसीद विशुद्ध सुसिद्ध-समूह॥
जरा-मरणोज्झित-वीत-विहार, विचिंतित निर्मल निरहंकार।
अचिन्त्य-चरित्र विदर्प विमोह, प्रसीद विशुद्ध सुसिद्ध-समूह॥
विवर्ण विगंध विमान विलोभ, विमाय विकाय विशब्द विशोभ।
अनाकुल केवल सर्व विमोह, प्रसीद विशुद्ध सुसिद्ध-समूह॥

असम - समयसारं चारु - चैतन्य - चिह्नम्।
पर - परणति - मुक्तं पद्मनंदीन्द्र - वन्द्यम॥
निखिल - गुण - निकेतं सिद्ध-चक्रं विशुद्धम्।
स्मरति नमति यो वा स्तौति सोभ्येति मुक्तिम्॥

ॐ ह्रीं श्री सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने
पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

## (अडिल्ल छन्द)

अविनाशी अविकार परम-रस-धाम हो।
समाधान सर्वज्ञ सहज अभिराम हो॥
शुद्ध बुद्ध अविरुद्ध अनादि अनंत हो।
जगत-शिरोमणि सिद्ध सदा जयवंत हो॥ 1॥

ध्यान अग्निकर कर्म-कलंक सबै दहे।
नित्य निरंजन देव स्वरूपी ह्वै रहे॥
ज्ञायक ज्ञेयाकार ममत्व-निवार के।
सो परमातम सिद्ध नमूँ सिर नायके॥ 2॥

## (दोहा)

अविचल ज्ञान-प्रकाशतै, गुण-अनंत की खान।
ध्यान धरे सो पाइए, परम सिद्ध-भगवान्॥ 3॥
अविनाशी आनंदमय, गुणपूरण भगवान्।
शक्ति हिये परमात्मा, सकल पदारथ जान॥ 4॥

॥ इत्याशीर्वादः पुष्पांजलिं क्षिपेत्॥

# समुच्चय-चौबीसी पूजा

**ऋषभ अजित संभव अभिनन्दन, सुमति पदम सुपार्श्व जिनराय।**
**चन्द पुहुप शीतल श्रेयांस जिन वासुपूज्य पूजित सुरराय॥**
**विमल अनन्त धर्म जस-उज्ज्वल, शान्ति कुन्थु अर मल्लि मनाय।**
**मुनिसुव्रत नमि नेमि पार्श्वप्रभु, वर्धमान पद पुष्प चढ़ाय॥**

ॐ ह्रीं श्रीऋषभादिमहावीरान्तचतुर्विंशतिजिनसमूह! अत्र अवतर अवतर संवौषट्।
ॐ ह्रीं श्रीऋषभादिमहावीरान्तचतुर्विंशतिजिनसमूह! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः।
ॐ ह्रीं श्रीऋषभादिमहावीरान्तचतुर्विंशतिजिनसमूह! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्।

**मुनि-मन-सम उज्ज्वल नीर, प्रासुक गन्ध भरा।**
**भरि कनक-कटोरी धीर, दीनी धार धरा॥**
**चौबीसौं श्रीजिनचन्द, आनन्द-कन्द सही।**
**पद जजत हरत भव-फन्द, पावत मोक्ष-मही॥**

ॐ ह्रीं श्रीऋषभादिवीरान्तेभ्यो जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

**गोशीर कपूर मिलाय, केशर-रंग भरी।**
**जिन-चरनन देत चढ़ाय, भव-आताप हरी॥ चौ..॥**

ॐ ह्रीं श्रीऋषभादिवीरान्तेभ्यो भवातापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

**तन्दुल सित सोम-समान, सुन्दर अनियारे।**
**मुक्ताफल की उनमान, पुंज धरों प्यारे॥ चौ..॥**

ॐ ह्रीं श्रीऋषभादिवीरान्तेभ्योऽक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

**वर-कंज कदम्ब करण्ड, सुमन सुगन्ध भरे।**
**जिन अग्र धरौं गुन-मण्ड, काम-कलंक हरे॥ चौ...॥**
ॐ ह्रीं श्रीऋषभादिवीरान्तेभ्यः कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

**मन-मोहन-मोदक आदि, सुन्दर सद्य बने।**
**रस-पूरित प्रासुक स्वाद, जजत छुधादि हने॥ चौ..॥**
ॐ ह्रीं श्रीऋषभादिवीरान्तेभ्यः क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

**तम-खण्डन दीप जगाय, धारों तुम आगे।**
**सब तिमिर मोह छय जाय, ज्ञान-कला जागे॥ चौ..॥**
ॐ ह्रीं श्रीऋषभादिवीरान्तेभ्यो मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

**दश गन्ध हुताशन माहिं, हे प्रभु खेवत हों।**
**मिस-धूम करम जरि जाहिं, तुम पद सेवत हों॥ चौ..॥**
ॐ ह्रीं ऋषभादिवीरान्तेभ्योऽष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

**शुचि पक्व सुरस फल सार, सब ऋतु के ल्यायो।**
**देखत दृग-मन को प्यार, पूजत सुख पायो॥ चौ..॥**
ॐ ह्रीं श्रीऋषभादिवीरान्तेभ्यो मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

**जल फल आठों शुचि सार, ताको अर्घ करों।**
**तुमको अरपों भवतार, भव तरि मोच्छ वरों॥ चौ...॥**
ॐ ह्रीं श्रीऋषभादिवीरान्तेभ्योऽनर्घपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

## जयमाला

**श्रीमत तीरथनाथ-पद, माथ नाय हित हेत।**
**गाऊँ गुणमाला अबै, अजर अमर पद देत॥**

जय भव-तम-भंजन जन-मन-कंजन, रंजन दिनमनि स्वच्छ करा।
शिव-मग-परकाशक अरि-गन-नाशक, चौबीसौं जिनराज वरा॥

पद्धरि छन्द

जय ऋषभदेव रिषिगन नमन्त, जय अजित जीत वसु अरि तुरन्त।
जय सम्भव भव-भय करत चूर, जय अभिनन्दन आनन्द-पूर॥
जय सुमति सुमति-दायक दयाल, जय पद्म पद्म-दुति-तन रसाल।
जय जय सुपार्श्व भव-पास-नाश, जय चन्द चन्द-तन-दुति-प्रकाश॥
जय पुष्पदन्त दुतिदन्त-सेत, जय शीतल शीतल-गुन-निकेत।
जय श्रेयनाथ नुत-सहसभुज्ज, जय वासव-पूजित वासुपूज्ज॥
जय विमल विमल-पद-देनहार, जय जय अनन्त गुनगन अपार।
जय धर्म धर्म शिव-शर्म देत, जय शान्ति शान्ति-पुष्टी करेत॥
जय कुन्थु कुन्थु-आदिक रखेय, जय अर जिन वसु अरि छय करेय।
जय मल्लि मल्ल हत मोह-मल्ल, जय मुनिसुव्रत व्रत-शल्ल-दल्ल॥
जय नमि नित वासव-नुत सपेम, जय नेमिनाथ वृष-चक्र-नेम।
जय पारसनाथ अनाथ-नाथ, जय वर्धमान शिव-नगर साथ॥

घत्ता

चौबीस जिनन्दा, आनन्द-कन्दा, पाप-निकन्दा सुखकारी।
तिन पद-जुग-चन्दा, उदय अमन्दा, वासव-वन्दा हितकारी॥

ॐ ह्रीं श्रीऋषभादिचतुर्विंशतिजिनेभ्यो महार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

भुक्ति-मुक्ति-दातार, चौबीसौं जिनराजवर।
तिन पद मन वच धार, जो पूजै सो शिव लहै॥

इत्याशीर्वादः पुष्पाञ्जलिं क्षिपामि।

●

## अर्घावलि

### बीस तीर्थंकर

जल फल आठों द्रव्य, अरघ कर प्रीति धरी है।
गणधर इन्द्रनिहूतैं थुति, पूरी न करी है॥
द्यानत सेवक जानके, जगतैं लेहु निकार।
सीमंधर जिन आदि दे, बीस विदेह मंझार॥
श्री जिनराज हो भव तारण तरण जिहाज।

ॐ ह्रीं विद्यमान-विंशति-तीर्थंकरेभ्यो अर्घम्।

### कृत्रिम-अकृत्रिम चैत्यालय

कृत्याकृत्रिमचारु-चैत्य-निलयान् नित्यं त्रिलोकी गतान्।
वंदे भावनव्यन्तरान् द्युतिवरान् स्वर्गामरावासगान्॥
सद्गन्धाक्षत-पुष्प-दाम-चरुकैः सद्दीप-धूपैः फलै-
र्द्रव्यै र्नीरमुखैर्यजामि सततं दुष्कर्मणां शान्तये॥

ॐ ह्रीं कृत्रिमाकृत्रिम-चैत्यालय-सम्बन्धि-जिनबिंबेभ्यो अर्घम्।

### सिद्ध परमेष्ठी-अर्घ्य

गन्धाढ्यं सुपयो मधुव्रत-गणैः संगं वरं चन्दनं
पुष्पौघं विमलं सदक्षत-चयं रम्यं चरुं दीपकम्।
धूपं गन्धयुतं ददामि विविधं श्रेष्ठं फलं लब्धये
सिद्धानां युगपत्क्रमाय विमलं सेनोत्तरं वाञ्छितम्॥

ॐ ह्रीं श्रीसिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिनेऽनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घम्।

## तीस चौबीसी अर्घ

**द्रव्य आठों जु लीना है, अर्घ कर में नवीना है,**
**पूजता पाप छीना है, भानुमल जोर कीना है।**
**द्वीप अढ़ाई सरस राजै, क्षेत्र दस ताँ विषैं छाजै,**
**सातशत बीस जिनराजे, पूजता पाप सब भाजै।**

ॐ ह्रीं पंचभरतैरावत क्षेत्रस्थ भूतभाविवर्तमान विंशत्यधिक सप्तशत तीर्थंकरभ्योऽर्घ्यं निर्वपामिति स्वाहा।

## चौबीस तीर्थंकर

**जल फल आठों शुचिसार, ताको अर्घ करों।**
**तुमको अरपों भवतार, भव तरि मोक्ष वरों॥**
**चौबीसों श्री जिनचन्द आनंद कन्द सही।**
**पद जजत हरत भव-फंद, पावत मोक्ष मही॥**

ॐ ह्रीं श्रीवृषभादिचतुर्विंशति तीर्थंकरेभ्यो अर्घम्।

## श्रीआदिनाथ भगवान का अर्घ

**शुचि निर्मल नीरं गंध सुअक्षत, पुष्प चरु ले मन हरषाय।**
**दीप धूप फल अर्घ सुलेकर, नाचत ताल मृदंग बजाय॥**
**श्रीआदिनाथ के चरण कमल पर, बलि बलि जाऊँ मन वचकाय।**
**हे करुणानिधि भव दुःख मेटो, यातैं मैं पूजों प्रभु पाय॥**

ॐ ह्रीं श्रीआदिनाथ-जिनेन्द्राय अनर्घपदप्राप्तये अर्घ नि. स्वाहा।

## श्रीचन्द्रप्रभ भगवान का अर्घ

सजि आठों दरब पुनीत, आठों अंग नमों,
पूजों अष्टम जिन मीत, अष्टम अवनि गमों ।
श्रीचन्द्रनाथ दुति चन्द, चरनन चंद लगै,
मन-वच-तन जजत अमंद, आतमजोति जगै ॥

ॐ ह्रीं श्रीचन्द्रप्रभजिनेन्द्राय अनर्घपदप्राप्तये अर्घं निर्वपामीति स्वाहा।

## श्रीशांतिनाथ भगवान का अर्घ

वसु द्रव्य संवारी, तुम ढिंगधारी, आनन्दकारी दृग प्यारी।
तुम हो भवतारी, करुणाधारी, यातै थारी शरनारी ॥
श्री शान्ति-जिनेशं, नुतशक्रेशं, वृषचक्रेशं, चक्रेशं।
हनि अरि चक्रेशं हे गुनधेशं दयामृतेशं मक्रेशं ॥

ॐ ह्रीं श्रीशान्तिनाथजिनेन्द्राय अनर्घपदप्राप्तये अर्घं निर्वपामीति स्वाहा।

## श्रीपार्श्वनाथ भगवान का अर्घ

नीर गन्ध अक्षतान् पुष्प चारु लीजिए,
दीप-धूप-श्रीफलादि अर्घ तें जजीजिये।
पार्श्वनाथ देव सेव आपकी करूँ सदा।
दीजिए निवास मोक्ष, भूलिये नहीं कदा ॥

ॐ ह्रीं श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय अनर्घपदप्राप्तये अर्घं निर्वपामीति स्वाहा।

## श्रीमहावीर भगवान का अर्घ

जलफल वसु सजि हिम थार, तनमन मोद धरों,
गुणगाऊँ भवदधितार, पूजत पाप हरों।
श्री वीर महा अतिवीर सन्मति नायक हो,
जय वर्द्धमान गुणधीर सन्मतिदायक हो॥

ॐ ह्रीं श्रीवर्द्धमानजिनेन्द्राय अनर्घपदप्राप्तये अर्घं निर्वपामीति स्वाहा।

## श्रीबाहुबली स्वामी का अर्घ

हूँ शुद्ध निराकुल सिद्धो सम, भवलोक हमारा वासा ना।
रिपु रागरु द्वेष लगे पीछे, यातें शिवपद को पाया ना॥
निज के गुण निज में पाने को, प्रभु अर्घ सजोंकर लाया हूँ।
हे बाहुबली तुम चरणों में, सुख सन्मति पाने आया हूँ॥

ॐ ह्रीं श्रीबाहुबलीजिनेन्द्राय अर्घं निर्वपामीति स्वाहा।

## सोलहकारण का अर्घ

जल फल आठों दरब चढ़ाय 'द्यानत' वरत करों मन लाय।
परमगुरु हो, जय-जय नाथ परम गुरु हो॥
दरशविशुद्धि भावना भाय, सोलह तीर्थंकर पददाय।
परमगुरु हो, जय-जय नाथ परमगुरु हो॥

ॐ ह्रीं दर्शनविशुद्धयादिषोडशकारणेभ्यो अनर्घपदप्राप्तये अर्घं नि. स्वाहा।

## पंचमेरु का अर्घ

**आठ दरब मय अरघ बनाय, 'द्यानत' पूजौं श्रीजिनराय।**
**महासुख होय, देखे नाथ परम सुख होय॥**
**पांचों मेरु असी जिनधाम, सब प्रतिमा को करो प्रणाम।**
**महासुख होय, देखे नाथ परम सुख होय॥**

ॐ ह्रीं पञ्चमेरु-सम्बन्धि-अशीतिजिन-चैत्यालयस्थ-जिनबिम्बेभ्यो अनर्घपदप्राप्तये अर्घं निर्वपामीति स्वाहा।

## नन्दीश्वरद्वीप का अर्घ

**यह अरघ कियो निज हेत, तुमको अरपतु हों।**
**'द्यानत' कीज्यो शिवखेत, भूमि समरपतु हों॥**
**नन्दीश्वर श्रीजिनधाम, बावन पूज करों।**
**वसुदिन प्रतिमा अभिराम, आनन्द भाव धरों॥**
**नन्दीश्वरद्वीप महान चारों दिशि सोहें।**
**बावन जिन मंदिर जान सुर-नर-मन मोहें॥**

ॐ ह्रीं श्रीनन्दीश्वरद्वीपे-पूर्वदक्षिणपश्चिमोत्तर-दिक्षु-द्विपञ्चाशज्जिनालयस्थ-जिनप्रतिमाभ्योनर्घपदप्राप्तये अर्घं निर्वपामीति स्वाहा।

## दशलक्षण का अर्घ

**आठों दरब संवार, 'द्यानत' अधिक उछाह सों।**
**भव आताप निवार, दस लच्छन पूजों सदा॥**

ॐ ह्रीं उत्तमक्षमादिदशलक्षणधर्मांगाय अनर्घपदप्राप्तये अर्घं नि. स्वाहा।

## रत्नत्रय का अर्घ

आठ दरब निरधार, उत्तम सो उत्तम लिये।
जनम रोग निरवार सम्यक् रत्नत्रय भजूँ॥

ॐ ह्रीं सम्यक् रत्नत्रयाय अनर्घपदप्राप्तये अर्घं निर्वपामीति स्वाहा।

## सप्तर्षि का अर्घ

जल गंध अक्षत पुष्प चरुवर, दीप धूप सु लावना।
फल ललित आठों द्रव्य मिश्रित, अर्घ कीजे पावना॥
मन्वादि चारण-ऋद्धि धारक, मुनिन की पूजा करूँ।
ता करें पातक हरें सारे, सकल आनंद विस्तरूँ॥

ॐ ह्रीं श्रीमन्वादिसप्तर्षिभ्यो अर्घं निर्वपामीति स्वाहा।

## निर्वाण क्षेत्र

जल गंध अच्छत फूल चरु फल धूप दीपायन धरौं।
'द्यानत' करो निरभय जगत तैं जोर कर विनती करौं॥
सम्मेदगढ़ गिरनार चम्पा पावापुर कैलाश कौं।
पूजों सदा चौबीस जिन निर्वाण भूमि निवास कौं॥

ॐ ह्रीं चतुर्विंशतितीर्थङ्करनिर्वाणक्षेत्रेभ्यो अर्घम्।

## सरस्वती अर्घ

जल चंदन अच्छत, फूल चरु अरु, दीप धूप फल अति लावें।
पूजा को ठानत, जो तुम जानत, सो नर द्यानत सुख पावें॥

**तीर्थङ्करकी धुनि, गणधरने सुनि, अंग रचे चुनि ज्ञानमई।**
**सो जिनवर वानी, शिवसुखदानी, त्रिभुवन मानी पूज्य भई॥**

ॐ ह्रीं श्रीजिनमुखोद्भवसरस्वतीदेव्यै अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं नि. स्वाहा।

## आचार्य श्रीविद्यासागरजी अर्घ

**भावों की निर्मल सरिता में, अवगाहन करने आया हूँ।**
**मेरा सारा दुख दर्द हरो, यह अर्घ भेंटने आया हूँ।**
**हे तपोमूर्ति, हे आराधक, हे योगीश्वर, हे महासंत**
**यह 'अरुण' कामना देख सकें युग युग तक आगामी वसंत।**

ॐ ह्रीं आचार्य विद्यासागर-मुनीन्द्राय अनर्घ्य-पदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

## महार्घ्य

**मैं देव श्री अर्हन्त पूजूँ सिद्ध पूजूँ चाव सों।**
**आचार्य श्री उवझाय पूजूँ साधु पूजूँ भाव सों॥**

**अर्हन्त भाषित बैन पूजूँ द्वादशांग रची गनी।**
**पूजूँ दिगम्बर गुरुचरन शिव हेतु सब आशा हनी॥**

**सर्वज्ञभाषित धर्म दशविधि दया-मय पूजूँ सदा।**
**जजि भावना षोडश रतनत्रय जा बिना शिव नहिं कदा॥**

**त्रैलोक्य के कृत्रिम अकृत्रिम चैत्य चैत्यालय जजूँ।**
**पन मेरु नन्दीश्वर जिनालय खचर सुर पूजित भजूँ॥**

कैलाश श्री सम्मेद श्री गिरनार गिरि पूजूँ सदा।
चम्पापुरी पावापुरी पुनि और तीरथ सर्वदा॥
चौबीस श्री जिनराज पूजूँ बीस क्षेत्र विदेह के।
नामावली इक सहस वसु जय होय पति-शिवगेह के॥

दोहा

जल गंधाक्षत पुष्प चरु दीप धूप फल लाय।
सर्व पूज्य पद पूज हूं बहु विधि भक्ति बढ़ाय॥

ॐ ह्रीं अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्याय-सर्वसाधु पञ्च। परमेष्ठिभ्यो, प्रथमानुयोग-करणानुयोग-चरणानुयोग। द्रव्यानुयोगेभ्यो, दशलक्षण-धर्मेभ्यो, दर्शनविशुद्धयादि षोडश-कारणेभ्यो, नन्दीश्वरद्वीप-सम्बन्धि-द्विपंचाशत जिन-चैत्यालयेभ्यो, पंचमेरु-सम्बन्धि-अशीति-जिन चैत्यालयेभ्यो, श्री सम्मेदशिखर-चम्पापुर-पावापुर गिरनार-अष्टापद आदि सिद्ध क्षेत्रेभ्यो, अतिशय क्षेत्रेभ्यो, विद्यमान विंशति तीर्थङ्करेभ्यो, भगवज्जिन-अष्टोतर-सहस्र-नामभ्योः, श्री वृषभादि महावीर-पर्यन्त-चतुर्विंशति-तीर्थङ्करेभ्यो महार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

●

## शान्ति-पाठ

शान्तिनाथ मुख शशि उनहारी, शील-गुण व्रत संयमधारी।
लखन एक सौ आठ बिराजैं, निरखत नयन कमलदल लाजैं॥
पंचम चक्रवर्ति पद धारी, सोलम तीर्थंकर सुखकारी।
इंद्र नरेंद्र पूज्य जिन नायक, नमो शान्तिहित शान्ति विधायक॥
दिव्य विटप पहुपन की वरषा, दुंदुभि आसन वाणी सरसा।
छत्र चमर भामंडल भारी, ये तुव प्रातिहार्य मनहारी॥
शान्ति जिनेश शान्ति सुखदायी, जगत्पूज्य पूजौं सिरनाई।
परम शान्ति दीजै हम सबको, पढ़ैं तिन्हें पुनि चार संघको॥
पूजैं जिन्हें मुकुट हार किरीट लाके, इंद्रादि देव अरु पूज्य पदाब्ज जाके।
सो शान्तिनाथ वरवंश जगत्प्रदीप, मेरे लिए करहिं शान्ति सदा अनूप॥
संपूजकों को प्रतिपालकों को, यतीनकों औ यतिनायकों को।
राजा प्रजा राष्ट्र सुदेश को ले, कीजै सुखी हे जिन! शांति को दे॥
होवे सारी प्रजा को सुख, बलयुत हो, धर्मधारी नरेशा।
होवै वर्षा समै पै तिलभर न रहै व्याधियों का अंदेशा॥
होवै चोरी न जारी, सुसमय बरतै, हो न दुष्काल मारी।
सारे ही देश धारैं जिनवर-वृषको, जो सदा सौख्यकारी॥
घातिकर्म जिन नाश करि पायो केवलराज।
शांति करो सब जगत में वृषभादिक जिनराज॥

शास्त्रों का हो पठन सुखदा, लाभ सत्संगतीका।
सद्वृत्तों का सुजस कहके, दोष ढाकूँ सभी का॥
बोलूँ प्यारे वचन हितके आपका रूप ध्याऊँ।
तौ लौं सेऊँ चरण जिनके मोक्ष जौ लौं न पाऊँ॥
तव पद मेरे हियमें, मम हिय तेरे पुनीत चरणों में।
तब लौं लीन रहों प्रभु जब लौं पाया न मुक्ति पद मैंने।
अक्षर पद मात्रा से दूषित जो कुछ कहा गया मुझसे।
क्षमा करो प्रभु सब करुणा करि पुनि छुड़ाहु भवदुखसे॥
हे जगबन्धु जिनेश्वर, पाऊँ तब चरण शरण बलिहारी।
मरण समाधि सुदुर्लभ कर्मों का क्षय हो सुबोध सुखकारी।

पुष्पाञ्जलिं क्षिपामि (नौ बार णमोकार)

## विसर्जन

बिन जाने वा जानके रही टूट जो कोय।
तुम प्रसादतैं परम गुरु सो सब पूरन होय॥
पूजनविधि जानूँ नहीं, नहिं जानूँ आह्वान।
और विसर्जन हूँ नहीं क्षमा करहू भगवान॥
मन्त्रहीन धनहीन हूँ क्रियाहीन जिनदेव।
क्षमा करहु राखहु मुझे देहु चरण की सेव॥
आये जो जो देव गण पूजे भक्ति प्रमान।
ते अब जावहू कृपाकर अपने अपने थान॥
सर्व मंगल मांगल्यम् सर्व कल्याण कारकम्।
प्रधानं सर्व धर्माणां जैनं जयतु शासनम्॥

## श्रीआदिनाथ जिनपूजा

**नाभिराय मरुदेवि के नन्दन, आदिनाथ स्वामी महाराज।**
**सर्वार्थसिद्धितैं आप पधारे, मध्यमलोक माहिं जिनराज ॥**
**इन्द्रदेव सब मिलकर आये, जन्म महोत्सव करने काज।**
**आह्वानन सब विधि मिल कर के, अपने कर पूजें प्रभु पाँय ॥**

ॐ ह्रीं श्रीआदिनाथजिनेन्द्र! अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वाननं।
ॐ ह्रीं श्रीआदिनाथजिनेन्द्र! अत्र तिष्ठः तिष्ठः ठः ठः स्थापनं।
ॐ ह्रीं श्रीआदिनाथजिनेन्द्र! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधिकरणं।

**क्षीरोदधि को उज्ज्वल जल ले, श्री जिनवर पद पूजन जाय।**
**जन्म जरा दुख मेटन कारन, ल्याय चढ़ाऊँ प्रभु के पाय ॥**
**श्री आदिनाथ के चरण कमल पर, बलि-बलि जाऊँ मैं मनवचकाय।**
**हे करुणानिधि भव दुःख मेटो, यातैं मैं पूजों प्रभु पाँय ॥**

ॐ ह्रीं श्रीआदिनाथ-जिनेन्द्राय जन्मजरामृत्यु-विनाशनाय जलं निर्व. स्वाहा।

**मलयागिरि चन्दन दाह निकन्दन, कंचन झारी में भर ल्याय।**
**श्रीजी के चरण चढ़ावो भविजन, भव आताप तुरत मिट जाय ॥श्री**

ॐ ह्रीं श्रीआदिनाथ-जिनेन्द्राय संसारताप-विनाशनाय चन्दनं निर्व. स्वाहा।

**शुभशालि अखंडित सौरभमंडित, प्रासुक जलसों धोकर ल्याय।**
**श्रीजी के चरण चढ़ावो भविजन, अक्षय पद का तुरत उपाय ॥श्री**

ॐ ह्रीं श्रीआदिनाथ-जिनेन्द्राय अक्षयपदप्राप्ताये अक्षतान् निर्व. स्वाहा।

**कमल केतकी बेल चमेली, श्री गुलाब के पुष्प मँगाय।**
**श्रीजी के चरण चढ़ावौ भविजन, काम बाण तुरत नसि जाय ॥श्री**

ॐ ह्रीं श्रीआदिनाथ-जिनेन्द्राय कामबाण-विध्वंसनाय पुष्पं निर्व. स्वाहा।

**नेवज लीना षट-रस भीना, श्री जिनवर आगे धरवाय।**
**थाल भराऊँ क्षुधा नसाऊँ, जिन गुण गावत मन हरषाय ॥श्री**

ॐ ह्रीं श्रीआदिनाथ-जिनेन्द्राय क्षुधारोग-विनाशनाय नैवेद्यं निर्व. स्वाहा।

**जगमग-जगमग होत दशों दिश, ज्योति रही मन्दिर में छाय।**
**श्रीजी के सन्मुख करत आरती, मोहतिमिर नासै दुखदाय ॥श्री**

ॐ ह्रीं श्रीआदिनाथ-जिनेन्द्राय मोहान्धकार-विनाशनाय दीपं निर्व. स्वाहा।

**अगर कपूर सुगन्ध मनोहर चन्दन कूट सुगन्ध मिलाय।**
**श्रीजी के सन्मुख खेय धूपायन, कर्मजरे चहुँगति मिटि जाय ॥श्री**

ॐ ह्रीं श्रीआदिनाथ-जिनेन्द्राय अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्व. स्वाहा।

**श्रीफल और बादाम सुपारी, केला आदि छुहारा ल्याय।**
**महा मोक्षफल पावन कारन, ल्याय चढ़ाऊँ प्रभु के पाय ॥श्री**

ॐ ह्रीं श्रीआदिनाथ-जिनेन्द्राय मोक्षफल-प्राप्ताये फलं निर्व. स्वाहा।

**शुचि निरमल नीरं गन्ध सुअक्षत, पुष्प चरू ले मन हरषाय।**
**दीप धूप फल अर्घ्य सु लेकर, नाचत ताल मृदङ्ग बजाय ॥श्री**

ॐ ह्रीं श्रीआदिनाथ-जिनेन्द्राय अनर्घ्यपद-प्राप्तये अर्घ्यं निर्व. स्वाहा।

●

## ॥ पंचकल्याणक ॥

**सर्वारथसिद्धि तैं चये, मरुदेवी उर आय।**
**दोज असित आषाढ़ की, जजूँ तिहारे पाँय ॥**

ॐ ह्रीं आषाढ़कृष्णद्वितीयायां गर्भकल्याणकप्राप्ताय
श्रीआदिनाथ-जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

**चैतवदी नौमी दिना, जन्म्या श्री भगवान।**
**सुरपति उत्सव अति कर्‌या, मैं पूजों धर ध्यान ॥**

ॐ ह्रीं चैत्रकृष्णनवम्यां जन्मकल्याणकप्राप्ताय श्रीआदिनाथ-जिनेन्द्राय अर्घ्यं।

**तृणवत्‌ऋद्धि सब छाँड़ि के, तप धार्‌यो वन जाय।**
**नौमी चैत्र असेत की, जजूँ तिहारे पाँय ॥**

ॐ ह्रीं चैत्रकृष्णनवम्यां तपः कल्याणकप्राप्ताय श्रीआदिनाथ-जिनेन्द्राय अर्घ्यं।

**फागुन वदि एकादशी, उपज्यो केवलज्ञान।**
**इन्द्र आय पूजा करी, मैं पूजों इह थान ॥**

ॐ ह्रीं फाल्गुनकृष्णएकादश्यां ज्ञानकल्याणकप्राप्ताय श्रीआदिनाथ-जिनेन्द्राय अर्घ्यं।

**माघ चतुर्दशि कृष्ण की, मोक्ष गये भगवान।**
**भवि जीवों को बोधिके, पहुँचे शिवपुर थान ॥**

ॐ ह्रीं माघकृष्णचतुर्दश्यां मोक्षकल्याणकप्राप्ताय श्रीआदिनाथ-जिनेन्द्राय अर्घ्यं।

## जयमाला

आदीश्वर महाराज मैं विनती तुमसे करूँ ॥
चारों गति के माँहि मैं दुःख पायो सो सुनो ॥
अष्टकर्म मैं हूँ एकलो, यह दुष्ट महादुख देत हो।
कबहूँ इतर निगोद में मोकूँ, पटकत करत अचेत हो ॥
म्हारी दीनतणी सुन विनती ॥टेक॥

प्रभु कबहूँक पटक्यो नरक में, जठै जीव महादुख पाय हो।
निष्ठुर निरदई नारकी, जठै करत परस्पर घात हो ॥ म्हारी.

प्रभु नरकतणां दुःख अब कहूँ, जठै करै परस्पर घात हो।
कोइयक बांध्यो खंभसों, पापी दे मुद्गर की मार हो ॥ म्हारी.
कोइयक कांटे करोतसों, पापी अंगतणी दोयफाड़हो।

प्रभु यह विधि दुःख भुगत्या घणा, फिर गति पाई तिरयंच हो ॥ म्हारी.
हिरणा बकरा बाछला, पशु दीन गरीब अनाथ हो।

प्रभु मैं ऊंट बलद भैंसा भयो, जापैं लदियोभार अपार हो ॥ म्हारी.
नहिं चाल्यो जठै गिर परयो, पापी दे सोटन की मारहो।

प्रभु कोइयक पुण्यसंजोगसूं, मैं तो पायो स्वर्ग निवास हो ॥ म्हारी.
देवाङ्गना संग रमि रह्यो जठै, भोगनिको परिताप हो।

प्रभु संग अप्सरा रमि रह्यो, करकर अति अनुराग हो ॥ म्हारी.
कबहूँक नंदनवन विषै प्रभु, कबहूँक वन गृह मांहि हो।

प्रभु यह विधिकाल गमायकैं, फिर माला गई मुरझाय हो ॥ म्हारी.
देव थिती सब घट गई, फिर उपज्यो सोच अपार हो।
सोचकरता तनखिर पड्यो, फिर उपज्यो गरभ मैं जाय हो ॥ म्हारी.
प्रभु गर्भतणा दुःख अब कहूँ, जठै सकड़ाई की ठौर हो।
हलन चलन नहिं कर सक्यो, जठै सघन कीच घनघोर हो ॥ म्हारी.
माता खावै चरपरो, फिर लागै तन संताप हो।
प्रभु ज्यों जननी तातो भखै, फिर उपजै तन संताप हो ॥ म्हारी.
औंधे मुख झूल्यो रह्यो, फेर निकसन कौन उपाय हो।
कठिन-कठिनकर नीसर्यो, जैसे निसरै जंत्री में तार हो ॥ म्हारी.
प्रभु फिर निकसत ही धरत्यां पड्यो, फिर लागी भूख अपार हो।
रोय रोय बिलख्यो घणो, दुख वेदन को नहिं पार हो ॥ म्हारी.
प्रभु दुख मेटन समरथ धनी, यातैं लागूँ तिहारे पांय हो।
सेवक अरज करै प्रभु, मोकूँ भवदधि पार उतार हो ॥ म्हारी.

श्रीजी की महिमा अगम है, कोई न पावै पार।
मैं मति अल्प अज्ञान हूँ, कौन करै विस्तार ॥

ॐ ह्रीं श्रीआदिनाथ-जिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये जयमाला पूर्णार्घं निर्व. स्वाहा।

विनती ऋषभ जिनेशकी, जो पढ़सी मनलाय।
सुरगों में संशय नहीं निहचै शिवपुर जाय ॥

॥ इत्याशीर्वादः पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत् ॥

●

## श्रीशान्तिनाथ जिनपूजा

**सर्वारथ सुविमान त्याग गजपुर में आये।**
**विश्वसेन भूपाल तासु के नन्द कहाये॥**
**पंचम चक्री भये मदन द्वादस में राजे।**
**मैं सेवूं तुम चरण तिष्ठये ज्यों दुःख भाजे॥**

ॐ ह्रीं श्रीशान्तिनाथ-जिनेन्द्र! अत्र अवतर अवतर संवौषट्।
ॐ ह्रीं श्रीशान्तिनाथ-जिनेन्द्र! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठःठः स्थापनं।
ॐ ह्रीं श्रीशान्तिनाथ-जिनेन्द्र! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्।

**पंचम उदधि तनो जल निरमल कंचन कलश भरे हरषाय।**
**धार देत ही श्रीजिन सन्मुख जन्म जरामृत दूर भगाय॥**
**शांतिनाथ पंचम चक्रेश्वर द्वादश मदन तनों पद पाय।**
**तिन के चरण कमल के पूजे रोग शोक दुःख दारिद जाय॥**

ॐ ह्रीं श्रीशान्तिनाथ-जिनेन्द्राय जन्म-जरा-मृत्यु-विनाशनाय जलं।

**मलियागिर चंदन कदली नंदन कुंकुम जल के संग घसाय।**
**भव आताप विनाशन कारण चरचूँ चरण सबै सुखदाय॥शां.**

ॐ ह्रीं श्रीशान्तिनाथ-जिनेन्द्राय संसार-ताप-विनाशनाय चंदनं।

**पुण्यराशि सम उज्जवल अक्षत शशि-मरीचि तसु देख लजाय।**
**पुंज किये तुम चरणन आगे अक्षय पद के हेतु बनाय॥शां.**

ॐ ह्रीं श्रीशान्तिनाथ-जिनेन्द्राय अक्षय-पद-प्राप्तये अक्षतान्।

**सुर पुनीत अथवा अवनी के कुसुम मनोहर लिए मँगाय।**
**भेंट धरत तुम चरणन के ढिंग ततक्षिन काम बाण नस जाय॥**
**शांतिनाथ पंचम चक्रेश्वर द्वादश मदन तनों पद पाय।**
**तिन के चरण कमल के पूजे रोग शोक दुःख दारिद जाय॥**

ॐ ह्रीं श्रीशान्तिनाथ-जिनेन्द्राय काम-बाण-विनाशनाय पुष्पं।

**भाँति-भाँति के सद्य मनोहर कीने मैं पकवान संवार।**
**भर थारी तुम सन्मुख लायो क्षुधा वेदनी बेग निवार॥शां.**

ॐ ह्रीं श्रीशान्तिनाथ-जिनेन्द्राय क्षुधारोग-विनाशनाय नैवेद्यं।

**घृत सनेह करपूर लाय कर दीपक ताके धरे प्रजार।**
**जग मग जोत होत मंदिर में मोह अंध को देत सुटार॥शां.**

ॐ ह्रीं श्रीशान्तिनाथ-जिनेन्द्राय मोहान्धकार-विनाशनाय दीपं।

**देवदारु कृष्णागरु चन्दन तगर कपूर सुगन्ध अपार।**
**खेऊँ अष्ट करम जारन को धूप धनंजय मांहि सुडार॥शां.**

ॐ ह्रीं श्रीशान्तिनाथ-जिनेन्द्राय अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्व.।

**नारंगी बादाम सुकेला एला दाडिम फल सहकार।**
**कंचन थाल माहिं धर लायो अरचत ही पाऊँ शिव नार॥शां.**

ॐ ह्रीं श्रीशान्तिनाथ-जिनेन्द्राय मोक्षफल-प्राप्तये फलं निर्व.।

**जल फलादि वसु द्रव्य संवारे अर्घ चढ़ाये मंगल गाय।**
**'बखत रतन' के तुम ही साहिब दीजे शिवपुर राज कराय॥शां.**

ॐ ह्रीं श्रीशान्तिनाथ-जिनेन्द्राय अनर्घपद-प्राप्तये अर्घं निर्व.।

## ॥ पंचकल्याणक ॥

**भादव सप्तमि श्यामा, सर्वारथत्याग नागपुर आये।**
**माता ऐरा नामा, मैं पूजूँ ध्याऊँ अर्घ शुभलाये॥**

ॐ ह्रीं भाद्रपदकृष्णसप्तम्यां गर्भकल्याणकप्राप्ताय श्रीशान्तिनाथ-जिनेन्द्राय अर्घं निर्वपामीति स्वाहा॥

**जन्मे तीरथ नाथं, वर जेठ असित चतुर्दशी सोहैं।**
**हरिगण नावें माथं, मैं पूजूँ शांतिचरण युग जोहै॥**

ॐ ह्रीं ज्येष्ठ-कृष्णचतुर्दश्यां जन्म-कल्याणकप्राप्ताय श्रीशान्तिनाथ-जिनेन्द्राय अर्घं निर्वपामीति स्वाहा॥

**चौदस जेठ अंधयारी, कानन में जाय योग प्रभु लीन्हा।**
**नवनिधिरत्न सुछांरी, मैं वन्दू आत्मसार जिन चीन्हा॥**

ॐ ह्रीं ज्येष्ठ-कृष्ण-चतुर्दश्यां तप-कल्याणकप्राप्ताय श्रीशान्तिनाथ-जिनेन्द्राय अर्घं निर्वपामीति स्वाहा॥

**पौष दसें उजियारा, अरि घाति ज्ञान भानु जिन पाया।**
**प्रातिहार्य वसुधारा, मैं सेऊँ सुर नर जासु यश गाया॥**

ॐ ह्रीं पौष-शुक्ला-दशम्यां ज्ञान-कल्याणकप्राप्ताय श्रीशान्तिनाथ-जिनेन्द्राय अर्घं निर्वपामीति स्वाहा॥

**सम्मेद शैलभारी, हन कर अघाति मोक्ष जिन पाई।**
**जेठ चतुर्दशि-कारी, मैं पूजूँ सिद्धथान सुखदाई॥**

ॐ ह्रीं ज्येष्ठ-कृष्ण-चतुर्दश्यां मोक्ष-कल्याणकप्राप्ताय श्रीशान्तिनाथ-जिनेन्द्राय अर्घं निर्वपामीति स्वाहा॥

## जयमाला

भये आप जिनदेव जगत में सुख विस्तारे।
तारे भव्य अनेक तिन्हों के संकट टारे॥

टारे आठों कर्म मोक्ष सुख तिनको भारी।
भारी विरद निहार लही मैं शरण तिहारी॥

तिहारे चरणन को नमूँ दुःख दारिद संताप हर।
हर सकल कर्म छिन एक में, शांति जिनेश्वर शांति कर॥

सारंग लक्षण चरण में, उन्नत धनु चालीस।
हाटक वर्ण शरीर द्युति, नमूँ शांति जग ईश॥

प्रभो आपने सर्व के फन्द तोड़े, गिनाऊँ कछू मैं तिनों नाम थोड़े।
पड़ो अंबु के बीच श्रीपाल राई, जपो नाम तेरो भए थे सहाई॥

धरो रायने सेठ को सूलिका पै, जपी आपके नाम की सार जापै।
भये थे सहाई तबै देव आये, करी फूल वर्षा सिंहासन बनाये॥

जबै लाख के धाम वह्नि प्रजारी, भयो पाण्डवों पै महा कष्ट भारी।
जबै नाम तेरे तनी टेर कीनी, करी थी विदुर ने वही राह दीनी॥

हरी द्रोपदी धातुकी खंड मांही, तुम्हीं वहाँ सहाई भला और नाहीं।
लियो नाम तेरो भलो शील पालो, बचाई तहाँ ते सबै दुःख टालो॥

जबै जानकी राम ने जो निकारी, धरे गर्भ को भार उद्यान डारी।
रटो नाम तेरो सबै सौख्यदाई, करी दूर पीड़ा सु क्षण ना लगाई॥

व्यसन सात सेवें करें तस्कराई, सुअंजन से तारे घड़ी ना लगाई।
सहे अंजना चंदना दुःख जेते, गये भाग सारे जरा नाम लेते॥

घड़े बीच में सास ने नाग डारो, भलो नाम तेरो जु सोमा संभारो।
गई काढ़ने को भई फूलमाला, भई है विख्यातं सबै दुःख टाला॥

इन्हें आदि देके कहाँ लों बखानें, सुनो विरद भारी तिहूँ लोक जानें।
अजी नाथ मेरी जरा ओर हेरो, बड़ी नाव तेरी रती बोझ मेरो॥

गहो हाथ स्वामी करो वेग पारा, कहूँ क्या अबै आपनी मैं पुकारा।
सबै ज्ञान के बीच भासी तुम्हारे, करो देर नाहीं मेरे शांति प्यारे॥

श्री शांति तुम्हारी, कीरत भारी, सुर नरनारी गुणमाला।
'बख्तावर' ध्यावे, रतन सु गावे, मम दुख दारिद सब टाला॥

ॐ ह्रीं श्रीशान्तिनाथ-जिनेन्द्राय अनर्घ-पद-प्राप्ताये महार्घं नि. स्वाहा॥

अजी एरा नन्दन छबि लखत ही आप अरणं।
धरै लज्जा भारी करत श्रुति सो लाग चरणं॥

करै सेवा सोई लहत सुख सो सार क्षण में।
घने दीना तारे हम चहत हैं बास तिन में॥

इत्याशीर्वादः पुष्पाञ्जलिं क्षिपामि।

●

## श्रीपार्श्वनाथ जिनपूजा

**वर स्वर्ग प्राणत को विहाय, सुमात वामा सुत भये।**
**विश्वसेन के पारस जिनेश्वर, चरन जिनके सुर नये॥**
**नव हाथ उन्नत तन विराजै, उरग लच्छन पद लसैं।**
**थापूं तुम्हें जिन आय तिष्ठो करम मेरे सब नसैं॥**

ॐ ह्रीं श्रीपार्श्वनाथ-जिनेन्द्र! अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वाननम्।
ॐ ह्रीं श्रीपार्श्वनाथ-जिनेन्द्र! अत्र तिष्ठ तिष्ठ। ठः ठः स्थापनम्।
ॐ ह्रीं श्रीपार्श्वनाथ-जिनेन्द्र! अत्र मम सन्निहितो भवभव वषट् सन्निधिकरणम्।

**क्षीरसोम के समान अम्बुसार लाइये।**
**हेमपात्र धारिकैं सु आपको चढ़ाइये॥**
**पार्श्वनाथ देव सेव आपकी करूँ सदा।**
**दीजिये निवास मोक्ष भूलिये नहीं कदा॥**

ॐ ह्रीं श्रीपार्श्वनाथ-जिनेन्द्राय जन्मजरामृत्यु-विनाशनाय जलं निर्व. स्वाहा।

**चंदनादि केशरादि स्वच्छ गंध लीजिये।**
**आप चरण चर्च मोह ताप को हनीजिये ॥पार्श्व.॥**

ॐ ह्रीं श्रीपार्श्वनाथ-जिनेन्द्राय भवातापविनाशनाय चन्दनं निर्व. स्वाहा।

**फेन चंद के समान अक्षतान् लाइकैं।**
**चर्नके समीप सार पूज को रचाइकैं॥पार्श्व.॥**

ॐ ह्रीं श्रीपार्श्वनाथ-जिनेन्द्राय अक्षयपद-प्राप्ताय अक्षतान् निर्व. स्वाहा।

**केवड़ा गुलाब और केतकी चुनायके।**
**धार चर्नके समीप काम को नसाइके॥**
**पार्श्वनाथ देव सेव आपकी करूँ सदा।**
**दीजिये निवास मोक्ष भूलिये नहीं कदा॥**

ॐ ह्रीं श्रीपार्श्वनाथ-जिनेन्द्राय कामबाण-विध्वंसनाय पुष्पं निर्व. स्वाहा।

**घेवरादि बावरादि मिष्ट सद्य में सने।**
**आप चर्न चर्चतें क्षुधादि रोग को हने॥पार्श्व.॥**

ॐ ह्रीं श्रीपार्श्वनाथ-जिनेन्द्राय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्व. स्वाहा।

**लाय रत्न दीपको सनेहपूर के भरूँ।**
**वातिका कपूर बारि मोह ध्वांत को हरूँ॥पार्श्व.॥**

ॐ ह्रीं श्रीपार्श्वनाथ-जिनेन्द्राय मोहान्धकार-विनाशनाय दीपं निर्व. स्वाहा।

**धूप गंध लेयकै सुअग्नि संग जारिये।**
**तास धूप के सुसंग अष्टकर्म वारिये॥पार्श्व.॥**

ॐ ह्रीं श्रीपार्श्वनाथ-जिनेन्द्राय अष्टकर्म-दहनाय धूपं निर्व. स्वाहा।

**खारिकादि चिरभटादि रत्न थाल में भरूँ।**
**हर्ष धारि के जजूँ सुमोक्ष सौख्य को वरूँ॥पार्श्व.॥**

ॐ ह्रीं श्रीपार्श्वनाथ-जिनेन्द्राय मोक्षफल-प्राप्तये फलं निर्व. स्वाहा।

**नीरगंध अक्षतान पुष्प चारु लीजिये।**
**दीप धूप श्रीफलादि अर्घ तैं जजीजिये॥पार्श्व.॥**

ॐ ह्रीं श्रीपार्श्वनाथ-जिनेन्द्राय अनर्घ्यपद-प्राप्तये अर्घं निर्व. स्वाहा।

## ॥ पंचकल्याणक ॥

**शुभप्राणत स्वर्ग विहाये, वामा माता उर आये।**
**वैशाखतनी दुतिकारी, हम पूजें विघ्न निवारी।**

ॐ ह्रीं वैशाखकृष्णद्वितीयायां गर्भमंगल-मंडिताय श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय अर्घ.।

**जनमे त्रिभुवन सुखदाता, एकादशि पौष विख्याता।**
**श्यामा तन अद्भुत राजै, रवि कोटिक तेज सु लाजै॥**

ॐ ह्रीं पौषकृष्णएकादश्यां जन्ममंगलप्राप्ताय श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय अर्घं।

**कलि पौष एकादशि आई, तब बारह भावन भाई।**
**अपने कर लौंच सु कीना, हम पूजें चरन जजीना॥**

ॐ ह्रीं पौषकृष्णएकादश्यां तपोमंगलप्राप्ताय श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय अर्घं।

**कलि चैत चतुर्थी आई, प्रभु केवल ज्ञान उपाई।**
**तब प्रभु उपदेश जु कीना, भवि जीवन को सुख दीना॥**

ॐ ह्रीं चैत्रकृष्णचतुर्थ्यां केवलज्ञानप्राप्ताय श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय अर्घ.।

**सित सातैं सावन आई, शिवनारि वरी जिनराई।**
**सम्मेदाचल हरि माना, हम पूजैं मोक्ष कल्याना॥**

ॐ ह्रीं श्रावणशुक्ल-सप्तम्यां मोक्षमंगलप्राप्ताय श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय अर्घं।

## जयमाला

**पारसनाथ जिनेन्द्र तने वच, पौंन भखी जरते सुन पाये।**
**कर्‌यो सरधान लह्योपद आन भये पद्मावती शेष कहाये॥**
**नाम प्रताप टरैं संताप सु, भव्यन को शिवशर्म दिखाये।**
**हैं विश्वसेन के नन्द भले, गुण गावत हैं तुमरे हर्षाये॥**

केकी-कंठ समान छबि, वपु उतंग नव हाथ।
लक्षण उरग निहार पग, वन्दों पारसनाथ॥

रची नगरी छह मास अगार, बने चहुँ गोपुर शोभ अपार।
सु कोट तनी रचना छवि देत, कंगूरन पै लहकैं बहुकेत॥
बनारस की रचना जु अपार, करी बहु भाँति धनेश तैयार।
तहाँ विश्वसेन नरेन्द्र उदार, करैं सुख वाम सु दे पटनार॥
तज्यो तुम प्रानत नाम विमान, भये तिनके वर नंदन आन।
तबै सुर इंद्र नियोगनि आय, गिरिंद करी विधि न्हौन सुजाय॥
पिता-घर सौंपि गये निज धाम, कुबेर करें वसु जाम सुकाम।
बढ़े जिन दूज मयंक समान, रमैं बहु बालक निर्जर आन॥
भए जब अष्टम वर्ष कुमार, धरे अणुव्रत्त महा सुखकार।
पिता जब आन करी अरदास, करो तुम ब्याह वरो मम आस॥
करी तब नाहिं रहे जग चंद, किये तुम काम कषाय जुमंद ।
चढ़े गजराज कुमारन संग, सुदेखत गंगतनी सुतरंग॥
लख्यो इक रंक करै तप घोर, चहुँ, दिशि अगनि बलै अतिजोर।
कहैं जिननाथ अरे सुन भ्रात, करे बहु जीवन की मत घात॥
भयो तब कोप कहै कित जीव, जले तब नाग दिखाय सजीव।
लख्यो यह कारण भावन भाय, नये दिव-ब्रह्मरिषीसुर आय॥
तबहिं सुर चार प्रकार नियोग, धरी शिविका निज कंध मनोग।
किये वन मांहिं निवास जिनंद धरे व्रत चारित आनंदकंद॥

गहे तहँ अष्टम के उपवास, गये धनदत्त तने जु अवास।
दियो पयदान महासुखकार, भई पन वृष्टि तहाँ तिहिं बार॥
गये तहँ कानन माहिं दयाल, धर्यो तुम योग सबहिं अघ टाल।
तबै वह धूम सुकेतु अयान, भयो कमठाचर को सुर आन॥
करै नभ गौन लखे तुम धीर, जु पूरब वैर विचार गहीर।
कियो उपसर्ग भयानक घोर, चली बहु तीक्षण पवनझकोर॥
रह्यो दशहूँ दिश में तम छाय, लगी बहु अग्नि लखी नहिं जाय।
सुरुण्डन के बिन मुण्ड दिखाय, पड़े जल मूसलधार अथाय॥
तबै पद्मावती-कन्त धनिंद, नये जुग आय जहाँ जिनचंद।
भग्यो तब रंक सुदेखत हाल, लह्यो तब केवलज्ञान विशाल॥
दियो उपदेश महा हितकार, सुभव्यन बोध सम्मेद पधार।
सुवर्णभद्र जहाँ कूट प्रसिद्ध, वरी शिवनारि लही वसुरिद्ध॥
जजूँ तुम चरन दोउ कर जोर, प्रभू लखिये अबही मम ओर।
कहै 'बखतावर रत्न' बनाय, जिनेश हमें भव-पार लगाय॥

जय पारस देवं, सुरकृत सेवं, वंदन चर्न सुनागपती।
करुणा के धारी, पर उपकारी, शिव सुखकारी कर्महती॥

ॐ ह्रीं श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय जयमाला पूर्णार्घं निर्वपामीति स्वाहा।

जो पूजै मन लाय भव्य पारस प्रभु नितही।
ताके दुख सब जाँय भीति व्यापै नहिं कित ही॥
सुख संपति अधिकाय पुत्र मित्रादिक सारे।
अनुक्रमसों शिव लहैं, 'रत्न' इमि कहै पुकारे॥

इत्याशीर्वादः पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्

●

# श्रीमहावीर जिन पूजा

**श्रीमत वीर हरें भव पीर, भरें सुख-सीर अनाकुलताई।**
**केहरि-अंक अरीकरदंक, नये हरि पंकति मौलि सुहाई॥**
**मैं तुमको इत थापतु हौं, प्रभु भक्ति-समेत हिये हरषाई।**
**हे करुणा-धन-धारक देव, इहाँ अब तिष्ठहु शीघ्रहिं आई॥**

ॐ ह्रीं श्रीवर्धमानजिनेन्द्र! अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वानम्।

ॐ ह्रीं श्रीवर्धमानजिनेन्द्र! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनम्।

ॐ ह्रीं श्रीवर्धमानजिनेन्द्र! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधिकरणम्।

**क्षीरोदधिसम शुचि नीर, कंचन-भृंग भरों।**
**प्रभु वेग हरो भव-पीर, यातैं धार करों॥**
**श्रीवीर महा अतिवीर सन्मति नायक हो।**
**जय वर्द्धमान गुण-धीर सन्मति-दायक हो॥**

ॐ ह्रीं श्रीमहावीरजिनेन्द्राय जन्म-जरा-मृत्यु-विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

**मलयागिर-चंदन-सार, केशर-संग घसों।**
**प्रभु भव-आताप निवार, पूजत हिय हुलसों॥श्री॥**

ॐ ह्रीं श्रीमहावीरजिनेन्द्राय भवाताप-विनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

**तंदुल सित शशि-सम शुद्ध, लीनों थार भरी।**
**तसु पुञ्ज धरों अविरुद्ध, पावों शिव-नगरी॥श्री॥**

ॐ ह्रीं श्रीमहावीरजिनेन्द्राय अक्षयपद-प्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

**सुरतरुके सुमन समेत, सुमन सुमन प्यारे।**
**सो मनमथ-भंजन हेत, पूजों पद थारे॥**
**श्रीवीर महा अतिवीर सन्मति नायक हो।**
**जय वर्द्धमान गुण-धीर सन्मति-दायक हो॥**

ॐ ह्रीं श्रीमहावीरजिनेन्द्राय कामबाण-विध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

**रस-रज्जत सज्जत सद्य, मज्जत थार भरी।**
**पद जज्जत रज्जत अद्य भज्जत भूख अरी॥श्री॥**

ॐ ह्रीं श्रीमहावीरजिनेन्द्राय क्षुधारोग-विनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

**तम-खंडित मंडित-नेह, दीपक जोवत हों।**
**तुम पदतर हे सुख-गेह, भ्रम-तम खोवत हों॥श्री॥**

ॐ ह्रीं श्रीमहावीरजिनेन्द्राय मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

**हरिचन्दन अगर कपूर, चूर सुगन्ध करा।**
**तुम पदतर खेवत भूरि, आठों कर्म जरा॥श्री॥**

ॐ ह्रीं श्रीमहावीरजिनेन्द्राय अष्टकर्म-दहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

**ऋतु-फल कल-वर्जित लाय, कंचन-थार भरों।**
**शिव-फल-हित हे जिनराय, तुम ढिंग भेंट धरौं॥श्री॥**

ॐ ह्रीं श्रीमहावीरजिनेन्द्राय मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

**जल-फल वसु सजि हिम-थार, तन-मन-मोद धरों।**
**गुण गाऊँ भव-दधि तार, पूजत पाप हरों॥श्री॥**

ॐ ह्रीं श्रीमहावीरजिनेन्द्राय अनर्घ-पदप्राप्तये अर्घं निर्वपामीति स्वाहा।

## ॥ पञ्चकल्याणक ॥

**मोहि राखो हो सरना, श्रीवर्द्धमान जिनरायजी,**
**मोहि राखो हो सरना।**

**गरभ साढ़ सित छट्ट लियो तिथि, त्रिशला उर अघ-हरना।**
**सुर सुरपति तित सेव करें नित, मैं पूजों भव-तरना। मोहि..**

ॐ ह्रीं आषाढ़शुक्लषष्ठ्यां गर्भमङ्गलमण्डिताय श्रीमहावीरजिनेन्द्राय अर्घम्।

**जनम चैत सित तेरस के दिन, कुंडलपुर कन-वरना।**
**सुरगिरि सुरगुरु पूज रचायो, मैं, पूजों भव-हरना। मोहि..**

ॐ ह्रीं चैत्रशुक्लत्रयोदश्यां जन्ममङ्गलमण्डिताय श्रीमहावीरजिनेन्द्राय अर्घम्।

**मंगसिर असित मनोहर दशमी, ता दिन तप आचरना।**
**नृप कुमार घर पारन कीनो, मैं पूजों तुम चरना। मोहि..**

ॐ ह्रीं मार्गशीर्षकृष्णदशम्यां तपोमङ्गलमण्डिताय श्रीमहावीरजिनेन्द्राय अर्घम्।

**शुकल दशैं वैशाख दिवस अरि, घाति चतुक छय करना।**
**केवल लहि भवि-भवसर तारे, जजों चरन सुख भरना। मोहि..**

ॐ ह्रीं वैशाखशुक्लदशम्यां ज्ञानकल्याणकमण्डिताय श्रीमहावीरजिनेन्द्राय अर्घम्।

**कार्तिक श्याम अमावस, शिव-तिय, पावापुरतें वरना।**
**गन-फनि-वृंद जजैं तित बहुविधि, मैं पूजों भय-हरना। मोहि.**

ॐ ह्रीं कार्तिककृष्णामावस्यायां मोक्षमङ्गलप्राप्ताय श्रीमहावीरजिनेन्द्राय अर्घम्।

## जयमाला

गनधर असनिधर चक्रधर, हलधर गदाधर वरवदा।
अरु चापधर विद्यासुधर, तिरसूलधर सेवहिं सदा॥
दुख-हरन आनंद-भरन तारन, तरन चरन रसाल है।
सुकुमाल गुन-मनिमाल उन्नत, भाल की जयमाल है॥
जय त्रिशला नंदन हरिकृत वंदन जगदानंदन चंद वरं।
भवताप निकंदन तनकनमंदन रहित सपंदन नयन धरं॥
जय केवलभानु कलासदनं, भवि कोकविकाशन कंदवनं।
जगजीत महारिपु-मोह-हरं, रज ज्ञान-दृगांवर चूर-करं॥
गर्भादिक मंगलमंडित हो, दुःखदारिदको नित खंडित हो।
जगमाहिं तुम्हीं सतपंडित हो, तुम ही भवभावविहंडित हो॥
हरिवंश सरोजन कों रवि हो, बलवंत महंत तुम्हीं कवि हो।
लहि केवलधर्मप्रकाश कियो, अबलों सोई मारग राजतियो॥
पुनि आपतने गुनिमाहिं सही, सुर मग्न रहैं जितने सब ही।
तिनकी वनिता गुन गावत हैं, लय माननि सों मनभावत हैं॥
पुनि नाचत रंग उमंग भरी, तुअ भक्तिविषैं पग येम धरी।
झननं झननं झननं झननं, सुर लेत तहा तननं तननं॥
घननं घननं घन घंट बजै, दृमदं दृमदं मिरदंग सजै।
गगनांगन-गर्भगता सुगता, ततता ततता अतता वितता॥
धृगतां धृगतां गति बाजत है, सुरताल रसाल जु छाजत है।
सननं सननं सननं नभमें, इक रूप अनेक जुधारि भ्रमें॥

कई नारि सुवीन बजावति हैं, तुमरो जस उज्ज्वल गावति हैं।
कर-तालविषै करताल धरें, सुर ताल विशाल जु नाद करें॥

इन आदि अनेक उछाह भरी, सुर भक्ति करैं प्रभुजी तुमरी।
तुम ही जग-जीवन के पितु हो, तुम ही विन कारनतें हितु हो॥

तुम ही सब विघ्न-विनाशन हो, तुम ही निज-आनंद-भासन हो।
तुम ही चित चिंतित-दायक हो, जगमाहिं तुम्हीं सब लायक हो॥

तुमरे पन मंगलमाहिं सही, जिय उत्तम पुण्य लियो सब ही।
हमको तुमरी सरनागत है, तुमरे गुनमें मन पागत है॥

प्रभु मो हिय आप सदा बसिये, जब लों वसु कर्म नहीं नसिये।
तब लों तुम ध्यान हिये वरतों, तब लों श्रुत चिंतन चित्त रतों॥

तब लों व्रत चारित चाहतु हों, तब लों शुभ भाव सुगाहतु हों।
तब लों सत-संगति नित्त रहों, तब लों मम संजम चित्त गहों॥

जब लों नहिं नाश करों अरिको, शिव-नारि वरों समता धरिको।
यह द्यो तब लों हमको जिन जी, हम जाचतु हैं इतनी सुन जी॥

श्रीवीर-जिनेशा नमित-सुरेशा, नागनरेशा भगति भरा।
'वृन्दावन' ध्यावै विघन नशावै, वांछित पावै शर्म-वरा॥

ॐ ह्रीं श्रीमहावीरजिनेन्द्राय महार्घ्यं स्वाहा।

श्रीसन्मति के जुगल पद, जो पूजै धरि प्रीति।
'वृन्दावन' सो चतुर नर, लहै मुक्ति-नवनीत॥

(इत्याशीर्वादः। पुष्पाञ्जलिं क्षिपामि)

●

# सोलहकारण-पूजा

**सोलह कारण भाय तीर्थंकर जे भये।**
**हरषे इन्द्र अपार मेरुपै ले गये॥**
**पूजा करि निज धन्य लख्यो बहु चावसौं।**
**हमहू षोडश कारन भावें भावसौं॥**

ॐ ह्रीं दर्शनविशुद्ध्यादिषोडशकारणानि! अत्र अवतर अवतर संवौषट्।
ॐ ह्रीं दर्शनविशुद्ध्यादिषोडशकारणनि! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः।
ॐ ह्रीं दर्शनविशुद्ध्यादिषोडशकारणनि! अत्र मम सन्निहितो भवत भवत वषट्।

**कंचन-झारी निरमल नीर पूजों जिनवर गुन-गम्भीर।**
**परम गुरु हो जय जय नाथ परम गुरु हो॥**
**दरशविशुद्धि भावना भाय सोलह तीर्थंकर-पद-दाय।**
**परम गुरु हो जय जय नाथ परम गुरु हो॥**

ॐ ह्रीं दर्शनविशुद्धि-विनयसम्पन्नता-शीलव्रतष्वनतिचाराभीक्ष्णज्ञानोपयोग-संवेग-शक्तितस्त्याग-तपः-साधुसमाधि-वैयावृत्यकरणार्हद्भक्ति-आचार्यभक्ति-बहुश्रुतिभक्ति-प्रवचनभक्ति-आवश्यकापरिहाणि-मार्गप्रभावना-प्रवचनवात्सल्येतितीर्थङ्करत्वकारणेभ्यो जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

**चन्दन घिसों कपूर मिलाय पूजों श्रीजिनवरके पाय।**
**परम गुरु हो जय जय नाथ परम गुरु हो ॥दरश.॥**

ॐ ह्रीं दर्शनविशुद्ध्यादिषोडशकारणेभ्यः संसारतापविनाशनाय चन्दनं।

**तन्दुल धवल सुगन्ध अनूप पूजों जिनवर तिहुँ जग-भूप।**
**परम गुरु हो जय जय नाथ परम गुरु हो ॥दरश.॥**

ॐ ह्रीं दर्शनविशुद्ध्यादिषोडशकारणेभ्योऽक्षयपदप्राप्तये अक्षतान्।

**फूल सुगन्ध मधुप-गुंजार पूजों जिनवर जग-आधार।**
**परम गुरु हो जय जय नाथ परम गुरु हो ॥दरश.॥**

ॐ ह्रीं दर्शनविशुद्ध्यादिषोडशकारणेभ्यः कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं।

**सद नेवज बहुविधि पकवान पूजों श्रीजिनवर गुणखान।**
**परम गुरु हो जय जय नाथ परम गुरु हो ॥दरश.॥**

ॐ ह्रीं दर्शनविशुद्ध्यादिषोडशकारणेभ्यः क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं।

**दीपक-ज्योति तिमिर छयकार पूजूँ श्रीजिन केवलधार।**
**परम गुरु हो जय जय नाथ परम गुरु हो ॥दरश.॥**

ॐ ह्रीं दर्शनविशुद्ध्यादिषोडशकारणेभ्यो मोहान्धकारविनाशनाय दीपं।

**अगर कपूर गन्ध शुभ खेय श्रीजिनवर आगे महकेय।**
**परम गुरु हो जय जय नाथ परम गुरु हो ॥दरश.॥**

ॐ ह्रीं दर्शनविशुद्ध्यादिषोडशकारणेभ्योऽष्टकर्मविध्वंसनाय धूपं.।

**श्रीफल आदि बहुत फलसार पूजों जिन वांछित-दातार।**
**परम गुरु हो जय जय नाथ परम गुरु हो ॥दरश.॥**

ॐ ह्रीं दर्शनविशुद्ध्यादिषोडशकारणेभ्यो मोक्षफलप्राप्तये फलम्।

**जल फल आठों दरब चढ़ाय 'द्यानत' वरत करो मनलाय।**
**परम गुरु हो जय जय नाथ परम गुरु हो ॥दरश.॥**

ॐ ह्रीं दर्शनविशुद्ध्यादिषोडशकारणेभ्योऽनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं.।

## जयमाला

षोडशकारण गुण करें, हरें चतुरगति-वास।
पाप पुंज सब नाशके, ज्ञान-भान परकाश ॥

दरशविशुद्धि धरे जो कोई, ताको आवागमन न होई।
विनय महाधारे जो प्राणी, शिव-वनिताकी सखी बखानी ॥

शील सदा दिढ़ जो नर पाले, सो औरनकी आपद टाले।
ज्ञानाभ्यास करे मनमाही, ताके मोह-महातम नाहीं ॥

जो संवेग-भाव विसतारे, सुरग-मुकति-पद आप निहारे।
दान देय मन हरष विषेखे, इहभव जस परभव सुख देखे ॥

जो तप तपे खपे अभिलाषा, चूरे करम-शिखर गुरु भाषा।
साधु-समाधि सदा मन लावे, तिहुँ जग भोग भोगि शिव जावे ॥

निश-दिन वैयावृत्य करैया, सो निहचै भव-नीर तिरैया।
जो अरहंत-भगति मन आने, सो जन विषय कषाय न जाने ॥

जो आचारज-भगति करै है, सो निर्मल आचार धरे है।
बहुश्रुतवन्त-भगति जो करई, सो नर संपूरन श्रुत धरई ॥

प्रवचन-भगति करे जो ज्ञाता, लहै ज्ञान परमानन्द-दाता।
षट् आवश्य काल जो साधे, सो ही रत्न-त्रय आराधे ॥

धरम-प्रभाव करे जे ज्ञानी, तिन शिव-मारग रीति पिछानी।
वत्सल अंग सदा जो ध्यावे, सो तीर्थंकर पदवी पावे ॥

ॐ ह्रीं दर्शनविशुद्ध्यादिषोडशकारणेभ्यः पूणार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

एही सोलह भावना, सहित धरे व्रत जोय।
देव-इन्द्र-नर-वंद्य-पद, 'द्यानत' शिव-पद होय ॥

॥ इत्याशीर्वादः पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत ॥

## पंचमेरु-पूजा

**तीर्थंकरों के न्हवन-जलतैं भये तीरथ सर्वदा।**
**तातैं प्रदच्छन देत सुर-गन पञ्च मेरुनकी सदा॥**
**दो जलधि ढाई द्वीपमें सब गनत-मूल विराजहीं।**
**पूजों असी जिनधाम-प्रतिमा होहि सुख दुख भाजहीं॥**

ॐ ह्रीं पञ्चमेरुसम्बन्धिजिनचैत्यालयस्थजिनप्रतिमासमूह! अत्र अवतर अवतर संवौषट्।

ॐ ह्रीं पञ्चमेरुसम्बन्धिजिनचैत्यालयस्थजिनप्रतिमासमूह! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः।

ॐ ह्रीं पञ्चमेरुसम्बन्धिजिनचैत्यालयस्थजिनप्रतिमासमूह! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्।

**सीतल-मिष्ट-सुवास मिलाय, जलसौं पूजों श्रीजिनराय।**
**महासुख होय, देखे नाथ परम सुख होय॥**
**पांचों मेरु असी जिनधाम, सब प्रतिमा को करों प्रनाम।**
**महासुख होय, देखे नाथ परम सुख होय॥**

ॐ ह्रीं सुदर्शन-विजय-अचल-मन्दिर-विद्युन्मालिपञ्चमेरु-सम्बन्धिजिन चैत्यालय-स्थजिनबिम्बेभ्यो जलं निर्वपामीति स्वाहा।

**जल केशर करपूर मिलाय, गंधसौं पूजों श्रीजिनराय।**
**महासुख होय, देखे नाथ परम सुख होय ॥पाँचो.॥**

ॐ ह्रीं पञ्चमेरुसम्बन्धिजिनचैत्यालयस्थजिनबिम्बेभ्यः चंदनं नि.।

**अमल अखंड सुगंध सुहाय, अच्छतसौं पूजों जिनराय।**
**महासुख होय, देखे नाथ परम सुख होय ॥पाँचो.॥**

ॐ ह्रीं पञ्चमेरुसम्बन्धिजिनचैत्यालयस्थजिनबिम्बेभ्योऽक्षतं नि.।

**बरन अनेक रहे महकाय, फूलसौं पूजों श्रीजिनराय।**
**महासुख होय, देखे नाथ परम सुख होय ॥पाँचो.॥**

ॐ ह्रीं पञ्चमेरुसम्बन्धिजिनचैत्यालयस्थजिनबिम्बेभ्यः पुष्पं नि.।

**मन-वांछित बहु तुरत बनाय, चरुसौं पूजों श्रीजिनराय।**
**महासुख होय, देखे नाथ परम सुख होय ॥पाँचो.॥**

ॐ ह्रीं पञ्चमेरुसम्बन्धिजिनचैत्यालयस्थजिनबिम्बेभ्यो नैवेद्यं नि.।

**तम-हर उज्ज्वल ज्योति जगाय, दीपसों पूजों श्रीजिनराय।**
**महासुख होय, देखे नाथ परम सुख होय ॥पाँचो.॥**

ॐ ह्रीं पञ्चमेरुसम्बन्धिजिनचैत्यालयस्थजिनबिम्बेभ्यो दीपं नि.।

**खेऊँ अगर अमल अधिकाय, धूपसों पूजो श्रीजिनराय।**
**महासुख होय, देखे नाथ परम सुख होय ॥पाँचो.॥**

ॐ ह्रीं पञ्चमेरुसम्बन्धिजिनचैत्यालयस्थजिनबिम्बेभ्यो धूपं नि.।

**सुरस सुवर्ण सुगंध सुभाय, फलसों पूजों श्रीजिनराय।**
**महासुख होय, देखे नाथ परम सुख होय ॥पाँचो.॥**

ॐ ह्रीं पञ्चमेरुसम्बन्धिजिनचैत्यालयस्थजिनबिम्बेभ्यः फलं नि.।

**आठ दरबमय अरघ बनाय, 'द्यानत' पूजों श्रीजिनराय।**
**महासुख होय, देखे नाथ परम सुख होय ॥पाँचो.॥**

ॐ ह्रीं पञ्चमेरुसम्बन्धि जिनचैत्यालयस्थ जिनबिम्बेभ्योऽर्घ्यं नि.।

## जयमाला

**प्रथम सुदर्शन-स्वामि, विजय अचल मन्दर कहा।**
**विद्युन्माली नाम, पञ्च मेरु जग में प्रगट॥**

**प्रथम सुदर्शन मेरु विराजे, भद्रशाल वन भूपर छाजे।**
**चैत्यालय चारों सुखकारी, मनवचतन करि वन्दना हमारी ॥**

**ऊपर पंच शतकपर सोहै, नन्दन-वन देखत मन मोहै।**
**चैत्यालय चारों सुखकारी, मनवचतन करि वन्दना हमारी ॥**

**साढ़े बासठ सहज ऊँचाई, वन सुमनस सोभे अधिकाई।**
**चैत्यालय चारों सुखकारी, मनवचतन करि वन्दना हमारी ॥**

**ऊंचा जोजन सहस छत्तीसं, पांडुकवन सोहै गिरिसीसं।**
**चैत्यालय चारों सुखकारी, मनवचतन करि वन्दना हमारी ॥**

**चारों मेरु समान बखाने, भूपर भद्रसाल चहुँ जाने।**
**चैत्यालय सोलह सुखकारी, मनवचतन करि वन्दना हमारी ॥**

**ऊँचे पाँच शतक पर भाखे, चारों  नन्दनवन अभिलाखे।**
**चैत्यालय सोलह सुखकारी मनवचतन करि वन्दना हमारी ॥**

**साढ़े पचपनसहस उतङ्गा, वनसौमनस चार बहुरङ्गा।**
**चैत्यालय सोलह सुखकारी मनवचतन करि वन्दना हमारी ॥**

**उच्च अठाइससहस बताये, पाण्डुक चारोंवन शुभ गाये।**
**चैत्यालय सोलह सुखकारी मनवचतन करि वन्दना हमारी ॥**

**सुरनर चारन वन्दन आवें, सो शोभा हम किहमुख गावें।**
**चैत्यालय अस्सी सुखकारी मनवचतन करि वन्दना हमारी ॥**

ॐ ह्रीं पञ्चमेरुसम्बन्धिजिनचैत्यालयस्थजिनबिम्बेभ्यो महार्घ्यं नि.।

**पञ्चमेरु की आरती, पढ़े सुने जो कोय।**
**'द्यानत' फल जाने प्रभु, तुरत महासुख होय ॥**

॥ इत्याशीर्वादः पुष्पांजलिं क्षिपेत् ॥

## नन्दीश्वरद्वीप-पूजा

**सरब परव में बड़ो अठाई परव है।**
**नन्दीश्वर सुर जाँहिं लेय वसु दरब है॥**
**हमें सकति सो नाहिं इहाँ करि थापना।**
**पूजें जिनग्रह-प्रतिमा है हित आपना॥**

ॐ ह्रीं श्रीनन्दीश्वरद्वीपे द्विपञ्चाशज्जिनालयस्थजिनप्रतिमासमूह! अत्र अवतर अवतर संवौषट्।
ॐ ह्रीं श्रीनन्दीश्वरद्वीपे द्विपञ्चाशज्जिनालयस्थजिनप्रतिमासमूह! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः।
ॐ ह्रीं श्रीनन्दीश्वरद्वीपे द्विपञ्चाशज्जिनालयस्थजिनप्रतिमासमूह! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्।

**कंचन-मणि-मय भृङ्गार, तीरथ-नीर भरा।**
**तिहुँ धार दयी निरवार, जामन मरन जरा॥**
**नन्दीश्वर-श्रीजिन-धाम, बावन पूज करों।**
**वसु दिन प्रतिमा अभिराम, आनन्द-भाव धरों॥**
**नन्दीश्वर द्वीप महान, चारों दिशि सोहें।**
**बावन जिनमंदिर जान, सुर नर मन मोहें॥**

ॐ ह्रीं श्रीनन्दीश्वरद्वीपे पूर्वदक्षिणपश्चिमोत्तरदिक्षु द्विपञ्चाशज्जिनालयस्थजिनप्रतिमाभ्यो जन्म-जरा-मृत्युविनाशनाय जलं नि.।

**भव-तप-हर शीतल वास, सो चन्दन नाहीं।**
**प्रभु यह गुन कीजे साँच, आयो तुम ठाहीं॥**
**नन्दीश्वर-श्रीजिन-धाम, बावन पूज करों।**
**वसु दिन प्रतिमा अभिराम, आनन्द-भाव धरों॥**

ॐ ह्रीं श्रीनन्दीश्वरद्वीपे द्विपश्चाशज्जिनालयस्थजिनप्रतिमाभ्यः संसारतापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

**उत्तम अक्षत जिनराज, पुञ्ज धरे सोहै।**
**सब जीते अक्ष-समाज, तुमसम अरु को है॥नन्दी.॥**

ॐ ह्रीं श्रीनन्दीश्वरद्वीपे द्विपश्चाशज्जिनालयस्थजिनप्रतिमाभ्योऽक्षय पदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

**तुम काम विनाशक देव, ध्याऊँ फूलनसौं।**
**लहुँ शील-लच्छमी एव, छूटों सूलनसौं॥नन्दी.॥**

ॐ ह्रीं श्रीनन्दीश्वरद्वीपे द्विपश्चाशज्जिनालयस्थजिनप्रतिमाभ्यः कामबाणविध्वंस-नाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

**नेवज इन्द्रिय-बलकार, सो तुमने चूरा।**
**ढिंग चरु तुम सोहै सार, अचरज है पूरा॥नन्दी.॥**

ॐ ह्रीं श्रीनन्दीश्वरद्वीपे द्विपश्चाशज्जिनालयस्थजिनप्रतिमाभ्यः क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

**दीपक की ज्योति-प्रकाश, तुम तन माँहि लसे।**
**टूटै करमनकी राश, ज्ञान-कणी दरसे॥नन्दी.॥**

ॐ ह्रीं श्रीनन्दीश्वरद्वीपे द्विपश्चाशज्जिनालयस्थजिनप्रतिमाभ्यो मोहान्धकार-विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

**कृष्णागरु-धूप-सुवास, दश-दिशि नारि वरे।**
**अति हरष-भाव परकाश, मानों नृत्ये करे ॥नन्दी.॥**

ॐ ह्रीं श्रीनन्दीश्वरद्वीपे द्विपश्चाशज्जिनालयस्थजिनप्रतिमाभ्योऽष्टकर्म-विध्वंसनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

**बहुविधि फल ले तिहुँ काल, आनन्द राचत है।**
**तुम शिव-फल देहु दयाल, तुहि हम जाचत है ॥नन्दी.॥**

ॐ ह्रीं श्रीनन्दीश्वरद्वीपे द्विपश्चाशज्जिनालयस्थजिनप्रतिमाभ्यो मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

**यह अरघ कियो निज-हेत, तुमको अरपतु हों।**
**'द्यानत' कीज्यो शिव-खेत, भूमि समरपतु हों ॥नन्दी.॥**

ॐ ह्रीं श्रीनन्दीश्वरद्वीपे द्विपश्चाशज्जिनालयस्थजिनप्रतिमाभ्योऽनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

## जयमाला

**कार्तिक फाल्गुन साढके अन्त आठ दिन माहिं।**
**नन्दीश्वर सुर जात है, हम पूजें इह ठाहिं ॥1॥**

**एकसौ त्रेसठ कोडि जोजन महा।**
**लाख चौरासिया एक दिश में लहा॥**
**आठमों द्वीप नन्दीश्वरं भास्वरं।**
**भौन्न बावन्न प्रतिमा नमों सुखकरं ॥2॥**

चार दिशि चार अञ्जनगिरी राजहीं।
सहस चौरासिया एक दिश छाजहीं॥
ढोलसम गोल ऊपर तले सुन्दरं॥
भौन बावन्न प्रतिमा नमों सुखकरं॥ 3॥

एक इक चार दिशि चारशुभ बावरी।
एक इक लाख जोजन अमल-जल भरी॥
चहुँ दिशा चार वन लाख जोजन वरं॥भौन.॥4॥

सोल वापीन मधि सोल गिरि दधिमुखं।
सहस दश महाजोजन लखत ही सुखं॥
बावरी कौन दो माहि दो रति करं॥भौन.॥5॥

शैल बत्तीस इक सहज जोजन कहे।
चार सोलै मिलें सर्व बावन लहे॥
एक इक सीसपर एक जिनमंदिरं॥भौन.॥6॥

बिम्ब अठ एकसौ रतनमयि सोहही।
देव देवी सरव नयन मन मोहही॥
पाँचसौ धनुष तन पद्म-आसन परं॥भौन.॥7॥

लाल नख-मुख नयन स्याम अरु स्वेत है।
स्याम-रङ्ग भौंह सिर-केश छबि देत है॥
वचन बोलत मनों हँसत कालुष हरं॥भौन.॥8॥

**कोटि-शशि-भान-दुति-तेज छिप जात है।**
**महा-वैराग-परिणाम ठहरात है॥**
**वयन नहिं कहें लखि होत सम्यकधरं॥**
**भौन बावन्न प्रतिमा नमों सुखकरं॥9॥**

ॐ ह्रीं श्रीनन्दीश्वरद्वीपे पूर्वदक्षिणपश्चिमोत्तरदिक्षु द्विपश्चाशज्जिनालयस्थ जिनप्रतिमाभ्यः पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

**नन्दीश्वर-जिन-धाम, प्रतिमा-महिमा को कहे।**
**'द्यानत' लीनो नाम, यही भगति शिव-सुख करे॥**

॥ इत्याशीर्वादः पुष्पांजलिं क्षिपेत॥

## दशलक्षणधर्म पूजा

**उत्तम छिमा मारदव आरजव भाव हैं,**
**सत्य शौच संयम तप त्याग उपाव हैं।**
**आकिंचन ब्रह्मचर्य धरम दश सार हैं,**
**चहुँगति-दुखतैं काढ़ि मुकति करतार हैं॥**

ॐ ह्रीं उत्तमक्षमादिदशलक्षणधर्म! अत्र अवतर अवतर संवौषद् आह्वाननम्।
ॐ ह्रीं उत्तमक्षमादिदशलक्षणधर्म! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनम्।
ॐ ह्रीं उत्तमक्षमादिदशलक्षणधर्म! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधिकरणम्।

**हेमाचलकी धार, मुनि-चित सम शीतल सुरभि।**
**भव-आताप निवार, दस-लच्छन पूजौं सदा॥**

ॐ ह्रीं उत्तमक्षमामार्दवार्जवसत्यशौचसंयमतपस्त्यागाकिञ्चन्य-ब्रह्मचर्येति दशलक्षणधर्माय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

**चन्दन केशर गार, होय सुवास दशों दिशा।**
**भव-आताप निवार, दस-लच्छन पूजौं सदा॥**

ॐ ह्रीं उत्तमक्षमादिदशलक्षणधर्माय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

**अमल अखण्डित सार, तन्दुल चन्द्र समान शुभ।**
**भव-आताप निवार, दस-लच्छन पूजौं सदा॥**

ॐ ह्रीं उत्तमक्षमादिदशलक्षणधर्माय अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

**फूल अनेक प्रकार, महकें ऊरध-लोकलों।**
**भव-आताप निवार, दस-लच्छन पूजौं सदा॥**

ॐ ह्रीं उत्तमक्षमादिदशलक्षणधर्माय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

**नेवज विविध निहार, उत्तम षट्-रस-संजुगत।**
**भव-आताप निवार, दस-लच्छन पूजौं सदा॥**

ॐ ह्रीं उत्तमक्षमादिदशलक्षणधर्माय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

**बाति कपूर सुधार, दीपक-ज्योति सुहावनी।**
**भव-आताप निवार, दस-लच्छन पूजौं सदा॥**

ॐ ह्रीं उत्तमक्षमादिदशलक्षणधर्माय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

**अगर धूप विस्तार, फैले सर्व सुगन्धता।**
**भव-आताप निवार, दस-लच्छन पूजौं सदा॥**

ॐ ह्रीं उत्तमक्षमादिदशलक्षणधर्माय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

**फल की जाति अपार, घ्रान-नयन-मन-मोहने।**
**भव-आताप निवार, दस-लच्छन पूजौं सदा॥**

ॐ ह्रीं उत्तमक्षमादिदशलक्षणधर्माय फलं निर्वपामीति स्वाहा।

**आठों दरब संवार, 'द्यानत' अधिक उछाहसौं।**
**भव-आताप निवार, दस-लच्छन पूजौं सदा॥**

ॐ ह्रीं उत्तमक्षमादिदशलक्षणधर्मायार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

पीडैं दुष्ट अनेक, बाँध मार बहुविधि करैं।
धरिये छिमा विवेक, कोप न कीजै पीतमा॥

उत्तम छिमा गहो रे भाई, इह-भव जस पर भव सुखदाई।
गाली सुनि मन खेद न आनो, गुन को औगुन कहै अयानो॥

कहि है अयानो वस्तु छीनै, बाँध मार बहुविधि करै।
घर तैं निकारै तन विदारै, वैर जो न तहाँ धरै॥
तैं करम पूरब किये खोटे, सहै क्यों नहिं जीयरा।
अति क्रोध-अगनि बुझाय प्रानी, साम्य-जल से सीयरा॥

ॐ ह्रीं उत्तमक्षमाधर्मांगाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

मान महाविषरूप, करहि नीच-गति जगत में।
कोमल सुधा अनूप, सुख पावै प्रानी सदा॥
उत्तम मार्दव गुन मन माना, मान करन कौ कौन ठिकाना।
बस्यो निगोद मांहि तै आया, दमरी रूंकन भाग बिकाया॥
रूंकन बिकाया भाग वशतैं, देव इक-इन्द्री भया।
उत्तम मुआ चाण्डाल हूवा, भूप कीड़ों में गया॥
जीतव्य जोवन धन गुमान, कहा करैं जल-बुदबुदा।
करि विनय बहु-गुन बड़े जन की, ज्ञान का पावै उदा॥

ॐ ह्रीं उत्तममार्दवधर्मांगाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

कपट न कीजै कोय, चोरन के पुर ना बसै।
सरल सुभावी होय, ताके घर बहु सम्पदा॥

उत्तम आर्जव रीति बखानी, रंचक दगा बहुत दुखदानी।
मन में होय सो वचन उचरिये, वचन होय सो तन सौं करिये॥
करिये सरल तिहुँ जोग अपने, देख निरमल आरसी।
मुख करै जैसा लखै तैसा, कपट-प्रीति अंगारसी॥
नहिं लहै लछमी अधिक छल करि, करम-बन्ध विशेषता।
भय त्यागि दूध बिलाव पीवै, आपदा नहिं देखता॥
ॐ ह्रीं उत्तमार्जवधर्माङ्गाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

कठिन वचन मति बोल, पर-निन्दा अरु झूठ तज।
सांच जवाहर खोल, सतवादी जग में सुखी॥
उत्तम सत्य-बरत पालीजै, पर-विश्वासघात नहिं कीजै।
सांचे-झूठे मानुष देखो, आपन पूत स्वपास न पेखो॥
पेखो तिहायत पुरुष सांचे को दरब सब दीजिये।
मुनिराज-श्रावक की प्रतिष्ठा सांच गुण लख लीजिये॥
ऊँचे सिंहासन बैठि वसु नृप, धरम का भूपति भया।
बच झूठ सेती नरक पहुँचा, सुरग में नारद गया॥
ॐ ह्रीं उत्तमसत्यधर्माङ्गाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

धरि हिरदै सन्तोष, करहु तपस्या देह सों।
शौच सदा निरदोष, धरम बड़ौ संसार में॥
उत्तम शौच सर्व जग जाना, लोभ पाप को बाप बखाना।
आशा-पास महा दुखदानी, सुख पावै सन्तोषी प्रानी॥

प्रानी सदा शुचि शील जप तप, ज्ञान ध्यान प्रभाव तैं।
नित गंग जमुन समुद्र न्हाये, अशुचि-दोष सुभाव तैं॥
ऊपर अमल मल भर्‌यो भीतर, कौन विधि घट शुचि कहै।
बहु देह मैली सुगुन-थैली, शौच-गुन साधू लहैं॥

ॐ ह्रीं उत्तमशौचधर्माङ्गाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

काय छहों प्रतिपाल, पंचेन्द्री मन वश करो।
संजम-रतन संभाल, विषय-चोर बहु फिरत हैं॥
उत्तम संजम गहु मन मेरे, भव-भव के भाजैं अघ तेरे।
सुरग-नरक-पशुगति में नाहीं, आलस-हरन करन सुख ठाहीं॥
ठाहीं पृथी जल आग मारुत, रूख त्रस करुना धरो।
सपरसन रसना घ्रान नैना, कान मन सब वश करो॥
जिस बिना नहिं जिनराज सीझे तू रुल्यो जग-कीच में।
इक घरी मत विसरो करो नित, आव जम-मुखबीच में॥

ॐ ह्रीं उत्तमसंयमधर्माङ्गाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

तप चाहैं सुरराय, करम-सिखर को वज्र है।
द्वादशविधि सुखदाय, क्यों न करै निज सकति सम॥
उत्तम तप सबमांहि बखाना, करम-शैल को वज्र-समाना।
बस्यो अनादि-निगोद मंझारा, भू-विकलत्रय-पशु तन धारा॥
धारा मनुष तन महादुर्लभ, सुकुल आयु निरोगता।
श्रीजैनवानी तत्त्वज्ञानी, भई विषय-पयोगता॥

अति महा दुरलभ त्याग विषय, कषाय जो तप आदरैं।
नर-भव अनूपम कनक घर पर, मणिमयी कलसा धरैं॥
ॐ ह्रीं उत्तमतपोधर्माङ्गाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

दान चार परकार, चार संघ को दीजिए।
धन बिजुली उनहार, नर-भव लाहो लीजिए॥
उत्तम त्याग कह्यो जग सारा, औषध शास्त्र अभय आहारा।
निहचै राग-द्वेष निरवारै, ज्ञाता दोनों दान संभारै॥
दोनों संभारे कूप-जल सम, दरब घर में परिनया।
निज हाथ दीजे साथ लीजे, खाय खोया बह गया॥
धनि साधु शास्त्र अभय दिवैया, त्याग राग विरोध को।
बिन दान श्रावक साधु दोनों, लहैं नाहीं बोध को॥
ॐ ह्रीं उत्तमत्यागधर्माङ्गाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

परिग्रह चौबीस भेद, त्याग करैं मुनिराजजी।
तिसना भाव उछेद, घटती जान घटाइए॥
उत्तम आकिंचन गुण जानो, परिग्रह-चिन्ता दुख ही मानो।
फांस तनक-सी तन में सालै, चाह लंगोटी की दुख भालै॥
भालै न समता सुख कभी नर, बिना मुनि-मुद्रा धरै।
धनि नगन पर तन-नगन ठाड़े, सुर-असुर पायनि परैं॥
घरमाहिं तिसना जो घटावे, रुचि नहीं संसार सौं।
बहु धन बुरा हू भला कहिये, लीन पर-उपगार सौं॥
ॐ ह्रीं उत्तमाकिञ्चन्यधर्माङ्गाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

शील-बाढ़ नौ राख, ब्रह्म-भाव अन्तर लखो।
करि दोनों अभिलाख, करहु सफल नर-भव सदा॥
उत्तम ब्रह्मचर्य मन आनौ, माता बहिन सुता पहिचानौ।
सहैं बान-वरषा बहु सूरे, टिकै न नैन-बान लखि कूरे॥
कूरे तिया के अशुचि तन में, काम-रोगी रति करैं।
बहु मृतक सड़हिं मसान माहीं, काग ज्यों चोंचैं भरैं॥
संसार में विष बेल नारी तजि गये जोगीश्वरा।
'द्यानत' धरम दश पैंडि चढ़ि कैं, शिव-महल में पग धरा॥
ॐ ह्रीं उत्तमब्रह्मचर्यधर्माङ्गाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

## जयमाला

दश लच्छन वन्दौं सदा, मनवांछित फलदाय।
कहों आरती भारती, हम पर होहु सहाय॥
उत्तम छिमा जहाँ मन होई, अन्तर-बाहिर शत्रु न कोई।
उत्तम मार्दव विनय प्रकासै, नानाभेद ज्ञान सब भासै॥
उत्तम आर्जव कपट मिटावै, दुरगति त्यागि सुगति उपजावै।
उत्तम सत्य-वचन मुख बोलै, सो प्रानी संसार न डोलै॥
उत्तम शौच लोभ-परिहारी, सन्तोषी गुण-रतन भण्डारी।
उत्तम संयम पालै ज्ञाता, नर-भव सफल करै ले साता॥

**उत्तम तप निरवांछित पालै, सो नर करम-शत्रु को टालै।**
**उत्तम त्याग करै जो कोई, भोगभूमि-सुर-शिवसुख होई॥**
**उत्तम आकिंचन व्रत धारै, परम समाधि दशा विसतारै।**
**उत्तम ब्रह्मचर्य मन लावै, नर-सुर सहित मुकति-फल पावैं॥**

**दोहा**

**करै करम की निरजरा, भव पींजरा विनाशि।**
**अजर अमर पद कों लहै, 'द्यानत' सुख की राशि॥**

ॐ ह्रीं उत्तमक्षमामार्दवार्जवशौचसत्यसंयमतपस्त्यागाकिञ्चन्यब्रह्मचर्य दशलक्षणधर्मेभ्यः पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

●

## रत्नत्रय-पूजा

**चहुँगति-फनि-विष-हरन-मणि, दुख-पावक-जल-धार।**
**शिव-सुख-सुधा-सरोवरी, सम्यक्-त्रयी निहार॥**

ॐ ह्रीं सम्यक्रत्नत्रयधर्म! अत्र अवतर-अवतर संवौषट् आह्वाननम्।
ॐ ह्रीं सम्यक्रत्नत्रयधर्म! अत्र तिष्ठ-तिष्ठ ठः ठः स्थापनम्।
ॐ ह्रीं सम्यक्रत्नत्रयधर्म! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधिकरणम्।

**क्षीरोदधि उनहार, उज्ज्वल जल अति सोहनो।**
**जनम-रोग निरवार, सम्यक् रत्नत्रय भजूँ॥**

ॐ ह्रीं सम्यक्रत्नत्रयाय जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं नि. स्वाहा।

**चन्दन-केसर गारि, परिमल-महा-सुरङ्ग-मय।**
**जनम-रोग निरवार, सम्यक् रत्नत्रय भजूँ॥**

ॐ ह्रीं सम्यक्रत्नत्रयाय भवातापविनाशनाय चंदनं नि. स्वाहा।

**तन्दुल अमल चितार, वासमती-सुखदाय के।**
**जनम-रोग निरवार, सम्यक् रत्नत्रय भजूँ॥**

ॐ ह्रीं सम्यक्रत्नत्रयाय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

**महकैं फूल अपार, अलि गुंजे ज्यों थुति करें।**
**जनम-रोग निरवार, सम्यक् रत्नत्रय भजूँ॥**

ॐ ह्रीं सम्यक्रत्नत्रयाय कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं नि. स्वाहा।

**लाडू बहु विस्तार, चीकन मिष्ट सुगन्धयुत।**
**जनम-रोग निरवार, सम्यक् रत्नत्रय भजूँ॥**

ॐ ह्रीं सम्यक्रत्नत्रयाय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं नि. स्वाहा।

**दीप-रतनमय सार, जोत प्रकाशे जगत मैं।**
**जनम-रोग निरवार, सम्यक् रत्नत्रय भजूँ।**

ॐ ह्रीं सम्यक्रत्नत्रयाय मोहान्धकारविनाशनाय दीपं नि. स्वाहा।

**धूप सुवास विथार, चन्दन अगर कपूर की।**
**जनम-रोग निरवार, सम्यक् रत्नत्रय भजूँ।**

ॐ ह्रीं सम्यक्रत्नत्रयाय अष्टकर्मविध्वंसनाय धूपं नि. स्वाहा।

**फल शोभा अधिकार, लौंग छुहारे जायफल।**
**जनम-रोग निरवार, सम्यक् रत्नत्रय भजूँ।**

ॐ ह्रीं सम्यक्रत्नत्रयाय मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

**आठ दरब निरधार, उत्तम सो उत्तम लिये।**
**जनम-रोग निरवार, सम्यक् रत्नत्रय भजूँ।**

ॐ ह्रीं सम्यक्रत्नत्रयाय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

**सम्यक् दरशन ज्ञान, व्रत शिव-मग-तीनों मयी।**
**पार उतारन यान, 'द्यानत' पूजों व्रतसहित॥**

ॐ ह्रीं सम्यक्रत्नत्रयाय पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

●

## सम्यग्दर्शन पूजा

**सिद्ध अष्ट-गुनमय प्रगट, मुक्त-जीव-सोपान।**
**ज्ञान चरित जिहं बिन अफल, सम्यकदर्श प्रधान॥**

ॐ ह्रीं अष्टांग-सम्यग्दर्शन! अत्र अवतर अवतर संवौषट्।
ॐ ह्रीं अष्टांग-सम्यग्दर्शन! अत्र तिष्ठ-तिष्ठ ठः ठः।
ॐ ह्रीं अष्टांग-सम्यग्दर्शन! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्।

**नीर सुगन्ध अपार, तृषा हरे मल छय करे।**
**सम्यग्दर्शन सार, आठ अंग पूजों सदा॥**

ॐ ह्रीं अष्टांग-सम्यग्दर्शनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

**जल केशर घनसार, ताप हरे सीतल करे।**
**सम्यग्दर्शन सार, आठ अंग पूजों सदा॥**

ॐ ह्रीं अष्टांग-सम्यग्दर्शनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

**अछत अनूप निहार, दारिद नाशे सुख भरे।**
**सम्यग्दर्शन सार, आठ अंग पूजों सदा॥**

ॐ ह्रीं अष्टांग-सम्यग्दर्शनाय अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

**पहुप सुवास उदार, खेद हरे मन शुचि करे।**
**सम्यग्दर्शन सार, आठ अंग पूजों सदा॥**

ॐ ह्रीं अष्टांग-सम्यग्दर्शनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

**नेवज विविध प्रकार, छुधा हरे थिरता करे।**
**सम्यग्दर्शन सार, आठ अंग पूजों सदा॥**

ॐ ह्रीं अष्टांग-सम्यग्दर्शनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

**दीप-ज्योति तम-हार, घट-पट परकाशे महा।**
**सम्यग्दर्शन सार, आठ अंग पूजों सदा॥**

ॐ ह्रीं अष्टांग-सम्यग्दर्शनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

**धूप घ्रान-सुखकार, रोग विघन जड़ता हरे।**
**सम्यग्दर्शन सार, आठ अंग पूजों सदा॥**

ॐ ह्रीं अष्टांग-सम्यग्दर्शनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

**श्रीफल आदि विथार, निहचे सुर-शिव-फल करे।**
**सम्यग्दर्शन सार, आठ अंग पूजों सदा॥**

ॐ ह्रीं अष्टांग-सम्यग्दर्शनाय फलं निर्वपामीति स्वाहा।

**जल गन्धाक्षत चारु, दीप धूप फल फूल चरु।**
**सम्यग्दर्शन सार, आठ अंग पूजों सदा॥**

ॐ ह्रीं अष्टांग-सम्यग्दर्शनाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

## जयमाला

**आप आप निहचे लखे, तत्त्व-प्रीति व्योहार।**
**रहित दोष पच्चीस हैं, सहित अष्ट गुन सार॥**

**सम्यक् दरशन-रतन गहीजे, जिन-वच में सन्देह न कीजें।**
**इह-भव विभव-चाह दुखदानी, पर-भव भोग चहै मत प्रानी॥**

**प्रानी गिलान न करि अशुचि लखि, धरम गुरु प्रभु परखिये।**
**पर-दोष ढकिये धरम डिगते, को सुथिर कर हरखिये॥**

**चहुँ संघको वात्सल्य कीजे, धरम की परभावना।**
**गुन आठसों गुन आठ लहिके, इहाँ फेर न आवना॥**

ॐ ह्रीं अष्टाङ्गसहितपञ्चविंशतिदोषरहित-सम्यग्दर्शनाय पूर्णार्घ्यं।

## सम्यग्ज्ञान पूजा

**पञ्च भेद जाके प्रगट, ज्ञेय-प्रकाशन-भान।**
**मोह-तपन-हर-चन्द्रमा, सोई सम्यग्ज्ञान॥**

ॐ ह्रीं अष्टविधसम्यग्ज्ञान! अत्र अवतर अवतर संवौषट्।
ॐ ह्रीं अष्टविधसम्यग्ज्ञान! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः।
ॐ ह्रीं अष्टविधसम्यग्ज्ञान! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्।

**नीर सुगन्ध अपार, तृषा हरे मल छय करे।**
**सम्यकज्ञान विचार, आठ भेद पूजों सदा॥**

ॐ ह्रीं अष्टविधसम्यग्ज्ञानाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

**जल केशर घनसार ताप हरे शीतल करे।**
**सम्यग्ज्ञान विचार, आठ भेद पूजों सदा॥**

ॐ ह्रीं अष्टविधसम्यग्ज्ञानाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

**अछत अनूप निहार, दारिद नाशे सुख भरे।**
**सम्यग्ज्ञान विचार, आठ भेद पूजों सदा॥**

ॐ ह्रीं अष्टविधसम्यग्ज्ञानाय अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

**पहुप सुवास उदार, खेद हरे मन शुचि करे।**
**सम्यग्ज्ञान विचार, आठ भेद पूजों सदा॥**

ॐ ह्रीं अष्टविधसम्यग्ज्ञानाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

**नेवज विविध प्रकार, छुधा हरे थिरता करे।**
**सम्यग्ज्ञान विचार, आठ भेद पूजों सदा॥**

ॐ ह्रीं अष्टविधसम्यग्ज्ञानाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

**दीप-जोति तम-हार, घट-पट परकाशैं महा।**
**सम्यग्ज्ञान विचार, आठ भेद पूजों सदा॥**

ॐ ह्रीं अष्टविधसम्यग्ज्ञानाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

**धूप घ्रान-सुखकार, रोग विघन जड़ता हरे।**
**सम्यग्ज्ञान विचार, आठ भेद पूजों सदा॥**

ॐ ह्रीं अष्टविधसम्यग्ज्ञानाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

**श्रीफल आदि विथार, निहचे सुर-शिव-फल करे।**
**सम्यग्ज्ञान विचार, आठ भेद पूजों सदा॥**

ॐ ह्रीं अष्टविधसम्यग्ज्ञानाय फलं निर्वपामीति स्वाहा।

**जल गन्धाक्षत चारु, दीप धूप फल-फूल चरु।**
**सम्यग्ज्ञान विचार, आठ भेद पूजों सदा॥**

ॐ ह्रीं अष्टविधसम्यग्ज्ञानाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

## जयमाला

**आप आप जानें नियत, ग्रन्थ-पठन व्योहार।**
**संशय-विभ्रम-मोह बिन, अष्ट अंग गुनकार॥**

**सम्यग्ज्ञान-रतन मन भाया, आगम तीजा नैन बताया।**
**अच्छर शुद्ध अर्थ पहिचानो, अच्छर अरथ उभय संग जानो ॥**

**जानो सुकाल-पठन जिनागम, नाम गुरु न छिपाइए।**
**तप रीति गहि बहु मान देके, विनय-गुन चित्त लाइए ॥**

**ये आठ भेद करम उछेदक, ज्ञान-दर्पण देखना।**
**इस ज्ञान ही सों भरत सीझा, और सब पट पेखना ॥**

ॐ ह्रीं अष्टविधसम्यग्ज्ञानाय पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

●

## सम्यक्चारित्र पूजा

**विषय-रोग औषध महा, दव-कषाय-जल-धार।**
**तीर्थङ्कर जाको धरे, सम्यक्चारित सार॥**

ॐ ह्रीं त्रयोदशविध-सम्यक्चारित्र! अत्र अवतर अवतर संवौषट्।
ॐ ह्रीं त्रयोदशविध-सम्यक्चारित्र! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः।
ॐ ह्रीं त्रयोदशविध-सम्यक्चारित्र! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्।

**नीर सुगन्ध अपार, तृषा हरे मल छय करे।**
**सम्यक्चारित सार, तेरहविध पूजों सदा॥**

ॐ ह्रीं त्रयोदशविधसम्यक्चारित्राय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

**जल केसर घनसार, ताप हरे शीतल करे।**
**सम्यक्चारित सार, तेरहविध पूजों सदा॥**

ॐ ह्रीं त्रयोदशविधसम्यक्चारित्राय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

**अछत अनूप निहार, दारिद नाशै सुख भरे।**
**सम्यक्चारित सार, तेरहविध पूजों सदा॥**

ॐ ह्रीं त्रयोदशविधसम्यक्चारित्राय अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

**पहुप सुवास उदार, खेद हरे मन शुचि करे।**
**सम्यक्चारित सार, तेरहविध पूजों सदा॥**

ॐ ह्रीं त्रयोदशविधसम्यक्चारित्राय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

नेवज विविध प्रकार, छुधा हरे थिरता करे।
सम्यक्चारित सार, तेरहविध पूजों सदा॥

ॐ ह्रीं त्रयोदशविधसम्यक्चारित्राय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

दीप-जोति तम-हार, घट-पट परकाशे महा।
सम्यक्चारित सार, तेरहविध पूजों सदा॥

ॐ ह्रीं त्रयोदशविधसम्यक्चारित्राय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

धूप घ्रान-सुखकार, रोग विघन जड़ता हरे।
सम्यक्चारित सार, तेरहविध पूजों सदा॥

ॐ ह्रीं त्रयोदशविधसम्यक्चारित्राय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

श्रीफल आदि विचार, निहचे सुर शिव-फल करें।
सम्यक्चारित सार, तेरहविध पूजों सदा॥

ॐ ह्रीं त्रयोदशविधसम्यक्चारित्राय फलं निर्वपामीति स्वाहा।

जल गन्धाक्षत चारु, दीप-धूप-फल-फूल-चरु।
सम्यक्चारित सार, तेरहविध पूजों सदा॥

ॐ ह्रीं त्रयोदशविधसम्यक्चारित्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

## जयमाला

आप आप थिर नियत नय, तप संयम व्योहार।
स्व-पर-दया दोनों लिये, तेरहविध दुखहार॥

सम्यक्चारित रतन संभालों, पाँच पाप तजि के व्रत पालो।
पंच समिति त्रय गुपति गहीजे, नर-भव सफल करहु तन छीजे॥

छीजे सदा तन को जतन यह, एक संजम पालिए।
बहु रुल्यो नरक-निगोदमांही, विषय-कषायनि टालिए॥
शुभ-करम जोग सुघाट आयो, पार हो दिन जात है।
'द्यानत' धरम की नाव बैठो, शिव-पुरी कुशलात है॥
ॐ ह्रीं त्रयोदशविधसम्यक्चारित्राय महार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

## समुच्चय जयमाला

सम्यक्दरशन-ज्ञान-व्रत, इन बिन मुकति न होय।
अन्ध पंगु अरु आलसी, जुदे जलें दव लोय॥

जापे ध्यान सुथिर बन आवे, ताके करमबन्ध कट जावे।
तासों शिव-तिय प्रीति बढ़ावै, जो सम्यक्रतनत्रय ध्यावै॥

ताको चहुँगति के दुःख नाहीं, सो न परे भवसागर मांही।
जनम-जरा-मृत दोष मिटावे, जो सम्यक्रतनत्रय ध्यावे॥

सोई दशलच्छन को साधैं, सोलहकारण को आराधैं।
सो परमातमपद उपजावे, जो सम्यक्रतनत्रय ध्यावे॥

सोई शक्र-चक्रिपद लेई, तीनलोक के सुख विलसेई।
सो रागादिक भाव बहावे, जो सम्यक्रतनत्रय ध्यावे॥

सोई लोकालोक निहारे, परमानन्ददशा विसतारे।
आप तिरे औरन तिरवावे, जो सम्यक्रतनत्रय ध्यावे॥

एक स्वरूप-प्रकाश-निज, वचन कह्यो नहिं जाय।
तीन भेद व्योहार सब, 'द्यानत' को सुखदाय॥
ॐ ह्रीं सम्यग्दर्शन-ज्ञान-सम्यक्चारित्रेभ्यो महार्घ्यं नि. स्वाहा।

●

# निर्वाणक्षेत्र-पूजा

**परम पूज्य चौबीस, जिहँ जिहँ थानक शिव गये।**
**सिद्धभूमि निश-दीस, मन वच तन पूजा करौं॥**

ॐ ह्रीं चतुर्विंशतितीर्थंकरनिर्वाणक्षेत्राणि! अत्र अवतर अवतरत संवौषट्
ॐ ह्रीं चतुर्विंशतितीर्थंकरनिर्वाणक्षेत्राणि! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः।
ॐ ह्रीं चतुर्विंशतितीर्थंकरनिर्वाणक्षेत्राणि! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्।

**शुचि क्षीर-दधि-सम नीर निरमल, कनक-झारी में भरौं।**
**संसार पार उतार स्वामी, जोर कर विनती करौं॥**
**सम्मेदगढ़ गिरनार चम्पा, पावापुरि कैलास को।**
**पूजौं सदा चौबीस जिन, निर्वाणभूमि-निवास को॥**

ॐ ह्रीं चतुर्विंशतितीर्थंकरनिर्वाणक्षेत्रेभ्यो जलं निर्वपामीति स्वाहा।

**केसर कपूर सुगन्ध चन्दन, सलिल शीतल विस्तरौं।**
**भव-ताप कौ सन्ताप मेटो, जोर कर विनती करौं॥ सम्मेद.॥**

ॐ ह्रीं चतुर्विंशतितीर्थंकरनिर्वाणक्षेत्रेभ्यः चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

**मोती-समान अखण्ड तन्दुल, अमल आनंद धरि तरौं।**
**औगुन-हरौ गुन करौ हम को, जोर कर विनती करौं ॥ सम्मेद.॥**

ॐ ह्रीं चतुर्विंशतितीर्थंकरनिर्वाणक्षेत्रेभ्योऽक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

**शुभ फूल-रास सुवास-वासित, खेद सब मन की हरौं।**
**दुख-धाम-काम विनाश मेरो, जोर कर विनती करौं॥**
**सम्मेदगढ़ गिरनार चम्पा, पावापुरि कैलास को।**
**पूजौं सदा चौबीस जिन, निर्वाणभूमि-निवास को॥**

ॐ ह्रीं श्री चतुर्विंशतितीर्थंकरनिर्वाणक्षेत्रेभ्यः पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

**नेवज अनेक प्रकार जोग मनोग धरि भय परिहरौं।**
**यह भूख-दूखन टार प्रभुजी, जोर कर विनती करौं॥ सम्मेद.॥**

ॐ ह्रीं श्री चतुर्विंशतितीर्थंकरनिर्वाणक्षेत्रेभ्यो नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

**दीपक-प्रकाश उजास उज्ज्वल, तिमिर सेती नहिं डरौं।**
**संशय-विमोह-विभरम-तम-हर, जोर कर विनती करौं॥ सम्मेद.॥**

ॐ ह्रीं श्री चतुर्विंशतितीर्थंकरनिर्वाणक्षेत्रेभ्यो दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

**शुभ-धूप परम-अनूप पावन, भान पावन आचरौं।**
**सब करम-पुंज जलाय दीज्यौ, जोर कर विनती करौं॥ सम्मेद. ॥**

ॐ ह्रीं श्री चतुर्विंशतितीर्थंकरनिर्वाणक्षेत्रेभ्यो धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

**बहु फल मँगाय चढ़ाय उत्तम, चार गति सौं निरवरौं।**
**निहचै मुकति-फल देहु मोको, जोर कर विनती करौं॥ सम्मेद. ॥**

ॐ ह्रीं श्री चतुर्विंशतितीर्थंकरनिर्वाणक्षेत्रेभ्यः फलं निर्वपामीति स्वाहा।

**जल गन्ध अच्छत फूल चरु फल, दीप धूपायन धरौं।**
**'द्यानत' करो निरभय जगत सौं, जोर कर विनती करौं॥ सम्मेद. ॥**

ॐ ह्रीं श्री चतुर्विंशतितीर्थंकरनिर्वाणक्षेत्रेभ्योऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

## जयमाला

श्रीचौबीस जिनेश, गिरि कैलासादिक नमों।
तीरथ महाप्रदेश, महापुरुष निरवाण तैं ॥
नमों ऋषभ कैलास पहारं। नेमिनाथ गिरनार निहारं ॥
वासुपूज्य चम्पापुर वन्दौं। सनमति पावापुर अभिनन्दौं ॥ 1 ॥
वन्दौं अजित अजित-पद-दाता। वन्दौं सम्भव भव-दुख-घाता
वन्दौं अभिनन्दन गण-नायक। वन्दौं सुमति सुमति के दायक ॥ 2 ॥
वन्दौं पदम मुकति-पदमाकर। वन्दौं सुपास आश-पासाहर ॥
वन्दौं चन्द्रप्रभ प्रभु चन्दा। वन्दौं सुविधि सुविधि-निधि-कन्दा ॥ 3 ॥
वन्दौं शीतल अघ-तप-शीतल। वन्दौं श्रियान्स श्रियान्स महीतल ॥
वन्दौं विमल विमल उपयोगी। वन्दौं अनन्त अनन्त सुखभोगी ॥ 4 ॥
वन्दौं धर्म धर्म-विस्तारा। वन्दौं शान्ति शान्ति-मन-धारा ॥
वन्दौं कुन्थु कुन्थु-रखवालं। वन्दौं अर अरि-हर गुणमालं ॥ 5 ॥
वन्दौं मल्लि काम-मल-चूरन। वन्दौं मुनिसुव्रत व्रत-पूरन ॥
वन्दौं नमि जिन नमित-सुरासुर। वन्दौं पास पास-भ्रम-जग-हर ॥ 6 ॥
बीसौं सिद्धभूमि जा ऊपर। शिखरसम्मेद-महागिरि भूपर ॥
एक बार वन्दै जो कोई। ताहि नरक-पशु-गति नहिं होई ॥ 7 ॥
नरपति नृप सुर शक्र कहावै। तिहुँ जग-भोग भोगि शिव पावै ॥
विघन-विनाशन मंगलकारी। गुण-विलास वन्दौं भव-तारी ॥ 8 ॥
जो तीरथ जावै पाप मिटावै, ध्यावै गावै भगति करै।
ताको जस कहिये सम्पति लहिये, गिरि के गुण को बुध उचरै ॥
ॐ ह्रीं श्री चतुर्विंशतितीर्थंकरनिर्वाणक्षेत्रेभ्यः पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

●

# आचार्य विद्यासागर पूजा

**आचार्य श्री के चरणों में झुका रहा अपना माथा।**
**जिनके जीवन की हर चर्या बन पड़ी स्वयं ही नवगाथा॥**
**जैनागम का वह सुधा कलश जो बिखराते हैं गली-गली।**
**जिनके दर्शन को पाकर के खिलती मुरझाई हृदय कली॥**

ॐ हूं श्री 108 आचार्य विद्यासागरमुनीन्द्र! अत्र अवतर-अवतर संवौषट् आह्वाननम्।
अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनम्।
अत्र मम सन्निहितो भव-भव वषट् सन्निधिकरणम्।

**सांसारिक विषयों में पड़कर, मैंने अपने को भरमाया।**
**इस रागद्वेष की वैतरणी से, अब तक पार नहीं पाया॥**
**तब विद्या सिन्धु के जल कण से, भव कालुष धोने आया हूँ।**
**आना जाना मिट जाय मेरा, यह बन्ध काटने आया हूँ॥**

ॐ हूं श्री 108 आचार्य विद्यासागरमुनीन्द्राय जन्मजरामृत्यु विनाशनाय जलं नि.

**क्रोध अनल में जल-जल कर, अपना सर्वस्व लुटाया है।**
**निज शान्त स्वरूप न जान सका, जीवन भर इसे भुलाया है॥**
**चन्दन सम शीतलता पाने अब, शरण तुम्हारी आया हूँ।**
**संसार ताप मिट जाये मेरा, चन्दन वन्दन को लाया हूँ॥**

ॐ हूं आचार्य श्री 108 विद्यासागरमुनीन्द्राय संसारतापविनाशनाय चन्दनं नि.

**जड़ को न मैंने जड़ समझा, नहिं अक्षय निधि को पहचाना।**
**अपने तो केवल सपने थे, भ्रम और जगत का भटकाना॥**

**चरणों में अर्पित अक्षत हैं, अक्षय पद मुझको मिल जावे।**
**तवज्ञान अरुण की किरणों से, यह हृदय कमल भी खिल जावे॥**

ॐ हूं आचार्य 108 श्री विद्यासागरमुनीन्द्राय अक्षतपदप्राप्तये अक्षतान् नि.

**इन विषय भोग की मदिरा पी, मैं बना सदा से मतवाला।**
**तृष्णा को तृप्त करें जितनी, उतनी बढ़ती इच्छा ज्वाला॥**
**मैं काम भाव विध्वंस हेतु, मन सुमन चढ़ाने आया हूँ।**
**यह मदन विजेता बन न सके, यह भाव हृदय में लाया हूँ॥**

ॐ हूं आचार्य श्री 108 विद्यासागरमुनीन्द्राय कामबाणविनाशनाय पुष्पं नि.

**इस क्षुधा रोग की व्यथा कथा, भव-भव में कहता आया हूँ।**
**अति भक्षअभक्ष्य भखे फिर भी, मन तृप्त नहीं कर पाया हूँ॥**
**नैवेद्य समर्पित करके मैं, तृष्णा की भूख मिटाऊँगा।**
**अब और अधिक न भटक सकूँ, यह अन्तर बोध जगाऊँगा॥**

ॐ हूं आचार्य श्री 108 विद्यासागरमुनीन्द्राय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं नि.

**मोहान्धकार से व्याकुल हो निज को नहीं मैंने पहचाना।**
**मैं रागद्वेष में लिप्त रहा, इस हाथ रहा बस पछताना॥**
**यह दीप समर्पित है मुनिवर, मेरा तम दूर भगा देना।**
**तुम ज्ञान दीप की बाती से, मम अन्तर दीप जला देना॥**

ॐ हूं आचार्य श्री 108 विद्यासागरमुनीन्द्राय मोहांधकार विनाशनाय दीपं नि.

**इन अशुभ कर्म ने घेरा है, मैंने अब तक यह माना था।**
**बस पाप कर्म तज पुण्य कर्म को, चाह रहा अपनाना था॥**

**शुभ-अशुभ कर्म सब रिपुदल हैं, मैं इन्हें जलाने आया हूँ।**
**इसीलिए तव चरणों में, अब धूप चढ़ाने आया हूँ॥**

ॐ हूं आचार्य श्री 108 विद्यासागरमुनीन्द्राय अष्टकर्मदहनाय धूपं नि. स्वाहा।

**भोगों को इतना भोगा कि, खुद को ही भोग बना डाला।**
**साध्य और साधक का अन्तर, मैंने आज मिटा डाला॥**
**मैं चिदानन्द में लीन रहूँ, पूजा का यह फल पाना है।**
**पाना था जिसके द्वारा वह, मिल बैठा मुझे ठिकाना है॥**

ॐ हूं आचार्य श्री 108 विद्यासागरमुनीन्द्राय मोक्षफलप्राप्तये फलं नि. स्वाहा।

**जग के वैभव को पाकर मैं, निश दिन कैसा अलमस्त रहा।**
**चारों गतियों की ठोकर को, खाने में ही अभ्यस्त रहा॥**
**मैं हूँ स्वतन्त्र ज्ञाता दृष्टा, मेरा पर से क्या नाता है।**
**कैसे अनर्घ पद पा जाऊँ, यह अरुण भावना भाता है॥**

ॐ हूं आचार्य श्री 108 विद्यासागरमुनीन्द्राय अनर्घपदप्राप्तये अर्घ्यं नि. स्वाहा।

## जयमाला

**हे गुरुवर तेरे गुण गाने, अर्पित हैं जीवन के क्षण क्षण।**
**अर्चन के सुमन समर्पित हैं, हरषाये जगती के कण कण॥**
**कर्नाटक के सदलगा ग्राम में, मुनिवर तुमने जन्म लिया।**
**मल्लप्पा पूज्यपिताश्री को, अरुसमय मति कृतकृत्य किया॥**
**बचपन के इस विद्याधर में, विद्या के सागर उमड़ पड़े।**
**मुनिराज देशभूषणजी से तुम, व्रत ब्रह्मचर्य से निकल पड़े॥**
**आचार्य ज्ञानसागर ने सन्, अड़सठ में मुनि पद दे डाला।**
**अजमेर नगर में हुआ उदित, मानो रवि तम हरने वाला॥**

परिवार तुम्हारा सबका सब, जिन पथ पर चलने वाला है।
वह भेद ज्ञान की छैनी से, गिरि कर्म काटने वाला है॥
तुम स्वयं तीर्थ से पावन हो, तुम हो अपने में समयसार।
तुम स्याद्वाद के प्रस्तोता, वाणी-वीणा के मधुर तार॥
तुम कुन्द-कुन्द के कुन्दन से, कुन्दन सा जग को कर देने।
तुम निकल पड़े बस इसलिए, भटके अटकों को पथ देने॥
वह मन्द मधुर मुस्कान सदा, चेहरे पर बिखरी रहती है।
वाणी कल्याणी है अनुपम, करुणा के झरने झरते हैं॥
तुममें कैसा सम्मोहन है, या है कोई जादू टोना।
जो दर्श तुम्हारे कर जाता, नहिं चाहे कभी विलग होना॥
इस अल्प उम्र में भी तुमने, साहित्य सृजन अति कर डाला।
जैन गीत गागर में तुमने, मानो सागर ही भर डाला॥
हैं शब्द नहीं गुण गाने को, गाना भी मेरा अनजाना।
स्वर ताल छन्द मैं क्या जानूँ, केवल भक्ति में रम जाना॥
भावों की निर्मल सरिता में, अवगाहन करने आया हूँ।
मेरा सारा दुःख दर्द हरो, यह अर्घ भेंटने लाया हूँ॥
हे तपो मूर्ति! हे आराधक! हे योगीश्वर! हे महासन्त!
यह अरुण कामना देख सके, युग-युग तक आगामी बसन्त॥

ॐ हूं आचार्य श्री 108 विद्यासागरमुनीन्द्राय अनर्घपदप्राप्तये पूर्णार्घ नि. स्वाहा।

॥ इत्याशीर्वादः पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत् ॥

●

# पूजन-मुनिश्री क्षमासागर

(तर्ज- देख तेरे संसार की...)

**पूज्य माताजी आराध्यमति जी द्वारा रचित**

**विद्या-गुरु की अनुपम कृति का, करते जय ...जय गान,**
**मुनिवर सच्चे संत महान।**
**सागर की धरती का कण-कण ...गाता है गुणगान,**
**मुनिवर शत-शत बार प्रणाम॥**
**भक्ति भाव का थाल सजाया, पूजन करने मन हर्षाया,**
**स्वर्ण-रजत का नहीं सिंहासन, श्रद्धा का ये पावन आसन।**
**क्षमा सिंधु मुनिवर जी आओ, करते हम आह्वान।**
**मुनिवर शत-शत बार प्रणाम॥**

ॐ ह्रीं श्री मुनि क्षमासागर अत्र अत्र अवतर संवौषट आह्वननं।
ॐ ह्रीं श्री मुनि क्षमासागर अत्र तिष्ठ ठः ठः स्थापनम्।
ॐ ह्रीं श्री मुनि क्षमासागर अत्र मम् सन्निहितो भव भव वषट सन्निधिकरणं।

**गंगा का जल पास नहीं है, यमुना का तट दूर बहुत है,**
**बहते चुप-चुप बहते नयना, अश्रु जल से पावन कुछ ना।**
**चरण चढ़ाने लाए ऋषिवर, करो इसे स्वीकार,**
**मुनिवर शत-शत बार प्रणाम॥**

जलम् : ॐ ह्रीं श्री मुनि क्षमासागराय जन्म जरा मत्यु विनाशनाय जलम् निर्वपामीति स्वाहा।

**ग्रीष्म ताप की तपन से भारी, कठिन परीक्षा गुरु तुम्हारी**
**कागज हो तो हर कोई बाँचे, कर्म लिखा कोई बाँच ना पाये**
**कर्म लेखनी लिखकर यतिवर, किया बहुत उपकार**
**चंदन वंदन हो स्वीकार...॥**

चन्दनं : ॐ ह्रीं श्री मुनि क्षमासागराय संसार ताप विनाशनाय चन्दनम् निर्वपामीति स्वाहा।

**क्षत-विक्षत जग नश्वर सारा, शाश्वत पद का बोध कराया,**
**अक्षय पद पाने को मुनिवर, मुक्तिपथ पर कदम बढ़ाया।**
**मोती सम से तंदुल अर्पित, हे जीवन आधार,**
**मुनिवर करो नमन स्वीकार ...।**

अक्षत : ॐ ह्रीं श्री मुनि क्षमासागराय अक्षय पद प्राप्ताय अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

**महकी संयम की फुलवारी, हर प्राणी पर करुणा धारी,**
**सहे परीषह उपसर्ग भारी, दृढ़ता/समता के भण्डारी।**
**पाकर शरण तुम्हारी मुनिवर, हम तो हुए निहाल,**
**श्रद्धा पुष्प करो स्वीकार...।**

पुष्पम् : ॐ ह्रीं श्री मुनि क्षमासागराय काम बाण विध्वंसनाय पुष्पम् निर्वपामीति स्वाहा।

**कितना सबको तृप्त किया है, सम्यक् गुण का दान दिया है,**
**प्रवचन का जब झरता झरना, अमृत जैसे लगते वयना (वचना)।**

**निज वाणी से, जिनवाणी से, समझाया सत् सार,**
**मुनिवर वंदन शत्-शत् वार...।**

नैवेद्यमः ॐ ह्रीं श्री मुनि क्षमासागराय क्षुधा रोग विनाशनाय नैवेद्यम् निर्वपामीति स्वाहा।

**अंतस् मन में किया उजाला, हुआ प्रकाशित जीवन सारा**
**दीप अनोखे मेरे मुनिवर! विद्या दाता क्षमा मुनीश्वर!**
**मिथ्या तम को हरने वाले दिया है सम्यक् ज्ञान**
**मुनिवर शत्-शत् बार प्रणाम...।**

दीपः ॐ ह्रीं श्री मुनि क्षमासागराय महामोहान्धकार विनाशनाय दीपम् निर्वपामीति स्वाहा।

**सोलह कारण भावना भायी, पगडण्डी सूरज तक आयी,**
**आतम अन्वेषी गुरुवर ने, 'अपने घर' की राह दिखाई।**
**अष्ट-कर्म की धूम उठाने, गुण वाणी ही सार,**
**मुनिवर वंदन शत्-शत् बार प्रणाम...।**

धूप : ॐ ह्रीं श्री मुनि क्षमासागराय अष्ट कर्म दहनाय धूपम् निर्वपामीति स्वाहा।

**लौकिक फल की ना थी आशा, संयम पथ में नहीं निराशा,**
**'विद्या-गुरु' में भक्ति तुम्हारी, अमर हो गई शक्ति तुम्हारी।**
**हम भी मुक्ति फल प्रत्याशी, पाये चरण सुधाम,**
**मुनिवर शत्-शत् वार प्रणाम...।**

फलम् : ॐ ह्रीं श्री मुनि क्षमासागराय महा मोक्ष फल प्राप्ताय फलम् निर्वपामीति स्वाहा।

**मैत्री भाव जगत में प्यारा, सब जीवों से रहे हमारा,**
**यही भावना मंगलकारी, यही भावना बने हितकारी।**
**जीवन अर्घ चढ़ाने वाले, क्षमा सिंधु भगवान,**
**मुनिवर दो अनर्घपद दान...।**

ॐ ह्रीं श्री मुनि क्षमासागराय अनर्घ्य पद प्राप्ताय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

**दोहा**

**जगती को देकर गये अद्भुत दीपक दान।**
**जन-जन के मन में बसा, क्षमा सिंधु मुनि नाम॥**

## जयमाला

(तर्ज : है प्रीत जहाँ की रीत...)

**हे क्षमा सिंधु! हे महामुनि! चरणों में शीश झुकाते हैं।**
**मुनिवर की यश गौरव गाथा, हम जयमाला में गाते हैं॥**
**जय हो, जय हो, जय जय हो...॥**

**इस बुंदेली की माटी में, एक महाश्रमण ने जन्म लिया,**
**'आशा देवी' के भाग्य जगे, 'जीवन' दाता को मान मिला।**
**सागर की धरती का आगे, मुनिवर सम्मान बढ़ाते हैं,**
**मुनिवर की यश ...............॥**

**सुकुमार, सुतन, कोमल था मन, शिक्षा की लगन लगी भारी,**
**सागर के विश्वविद्यालय में, की एम-टेक की तैयारी।**
**फिर केवल ज्ञान ज्योति पाने, विद्यासागर में समाते हैं,**
**मुनिवर की यश...............॥**

**वह धन्य दिवस, वह धन्य काल, स्वर्णिम इतिहास रचाया था,**
**वीरों के इंद्र ने सचमुच जब, महावीर का पथ अपनाया था।**
**चंदा, सूरज, अवनी, अंबर, श्रद्धा से शीश झुकाते हैं,**
**मुनिवर की यश...............॥**

**विद्या को जीवन अर्पित कर, विद्या का दीप जलाया है,**
**हर नन्हें-नन्हें दीपों में, श्रद्धा विश्वास जगाया है।**
**यह ज्योति निरंतर जलती रहे, बस यही भावना भाते हैं,**
**मुनिवर की यश...............॥**

**कितने कर्मो के लेख लिखे, कितने कर्मो के वेग सहे,**
**हे महायती! अंतिम क्षण तक, वैराग्य भाव से भरे रहे।**
**हे जिन शासन के दिग् दिगन्त! जिन महिमा पाठ पढ़ाते हैं,**
**मुनिवर की यश...............॥**

ॐ ह्री श्री मुनि क्षमासागराय जयमाला पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

**नन्हीं सी आराधना, मुनि आराध्य महान।**
**हो समग्र मम साधना, पाये पद निर्वाण॥**

●

# निर्वाणकाण्ड (भाषा)

वीतराग वंदौं सदा, भावसहित सिरनाय।
कहूँ कांड निर्वाणकी, भाषा सुगम बनाय॥

अष्टापद आदीश्वर स्वामि, वासुपूज्य चंपापुरि नामि।
नेमिनाथ स्वामी गिरनार, वंदों भाव-भगति उर धार॥

चरम तीर्थंकर चरम-शरीर, पावापुरि स्वामी महावीर।
शिखरसमेद जिनेसुर बीस, भावसहित वंदौं निश-दीस॥

वरदत्तरायरु इंद मुनिंद, सायरदत्त आदि गुणवृंद।
नगर तारबर मुनि उठकोडि, वंदौं भावसहित कर जोड़ि॥

श्रीगिरनार शिखर विख्यात, कोडि बहत्तर अरु सौ सात।
संबु प्रदुम्न कुमर द्वै भाय, अनिरुध आदि नमूँ तसुपाय ॥

रामचंद्रके सुत द्वै वीर, लाडनरिंद आदि गुणधीर।
पाँच कोडि मुनि मुक्ति मझार, पावागिरि वंदौं निरधार॥

पाण्डव तीन द्रविड-राजान, आठ कोडि मुनि मुकति पयान।
श्रीशत्रुंजयगिरिके सीस, भावसहित वंदौं निश-दीस॥

जे बलभद्र मुकति में गये, आठ कोडि मुनि औरहु भये।
श्रीगजपन्थ शिखर सुविशाल, तिनके चरण नमूँ तिहुँ काल ॥

राम हणू सुग्रीव सुडील, गव गवाख्य नील महानील।
कोडि निन्याणव मुक्ति पयान, तुंगीगिरि वन्दौ धरि ध्यान ॥

नंग अनंग कुमार सुजान, पाँच कोडि अरु अर्ध प्रमान।
मुक्ति गये सोनागिरि-शीश, ते वन्दौं त्रिभुवनपति ईस ॥

रावणके सुत आदिकुमार, मुक्ति गये रेवा-तट सार।
कोटि पंच अरु लाख पचास, ते वन्दौं धरि परम हुलास ॥

रेवानदी सिद्धवर कूट, पश्चिम दिशा देह जहँ छूट।
द्वै चक्री दश कामकुमार, ऊठकोड़ि वन्दौं भव पार ॥

बडवानी बडनयर सुचंग, दक्षिण दिशि गिरि चूल उतंग।
इन्द्रजीत अरु कुम्भ जु कर्ण, ते वन्दौं भव-सागर-तर्ण ॥

सुवरणभद्र आदि मुनि चार, पावागिरि-वर-शिखरमंझार।
चेलना-नदी-तीरके पास, मुक्ति गये वन्दौं नित तास ॥

फलहोडी बडगाम अनूप, पश्चिम दिशा द्रोणगिरि रूप।
गुरुदत्तादि मुनीसुर जहाँ, मुक्ति गये वन्दौं नित तहाँ ॥

बाल महाबाल मुनि दोय, नागकुमार मिले त्रय होय।
श्रीअष्टापद मुक्ति मंझार, ते वन्दौं नित सुरत संभार ॥

अचलापुर की दिश ईसान, तहाँ मेढ़गिरि नाम प्रधान।
साढ़े तीन कोडि मुनिराय, तिनके चरण नमूँ चित लाय॥

वंसस्थल वनके ढिग होय, पश्चिम दिशा कुन्थुगिरि सोय।
कुलभूषण दिशिभूषण नाम, तिनके चरणनि करूँ प्रणाम॥

जसरथ राजाके सुत कहे, देश कलिंग पाँचसौ लहे।
कोटिशिला मुनि कोटि प्रमान, वन्दन करूँ जोरि जुग पान॥

समवसरण श्रीपार्श्व-जिनन्द, रेसिन्दीगिरि नयनानन्द।
वरदत्तादि पंच ऋषिराज, ते वन्दौं नित धरम-जिहाज॥

मथुरापुरी पवित्र उद्यान, जम्बूस्वामी गये निर्वाण।
चरम केवली पंचमकाल, ते वन्दों नित दीन दयाल॥

तीन लोकके तीरथ जहाँ, नित प्रति वन्दन कीजै तहाँ।
मन-वच-कायसहित सिर नाय, वन्दन करहिं भविक गुण गाय॥

संवत् सतरहसौ इकताल, अश्विन सुदि दशमी सुविशाल।
'भैया' वन्दन करहिं त्रिकाल, जय निर्वाणकाण्ड गुणमाल॥

●

# स्तुतिपाठ

मैं तुम चरण-कमल गुण गाय। बहुविधि भक्ति करी मन लाय॥
जनम जमन प्रभु पाऊँ तोहि। यह सेवा-फल दीजे मोहि॥
कृपा तिहारी ऐसी होय। जामन मरन मिटावो मोय॥
बार बार मैं विनती करूँ। तुम सेवा भव-सागर तरूँ॥
नाम लेत सब दुख मिट जाय। तुम दर्शन देख्या प्रभु आय॥
तुम हो प्रभु देवन के देव। मैं तो करूँ चरण तव सेव॥
जिन पूजा तैं सब सुख होय। जिन पूजा सम अवर न कोय॥
जिन पूजा तैं स्वर्ग विमान। अनुक्रम तैं पावै निर्वाण॥
मैं आयो पूजन के काज। मेरो जन्म सफल भयो आज॥
पूजा करके नवाऊँ शीश। मुझ अपराध क्षमहु जगदीश॥

सुख देना दुख मेटना, यही तुम्हारी बान।
मो गरीब की बीनती, सुन लीज्यो भगवान॥
पूजन करते देव का, आदि मध्य अवसान।
सुरगन के सुख भोगकर, पावै मोक्ष निदान॥
जैसी महिमा तुमविषैं, और धरै नहिं कोय।
जो सूरज में जोति है, तारागण नहिं सोय॥
नाथ तिहारे नामतैं, अघ छिन माहिं पलाय।
ज्यों दिनकर परकाश तैं, अन्धकार विनशाय॥
बिन मतलब बहुते अधम, तार दिये स्वयमेव।
मेरा भी कारज सफल, कर देवन के देव॥
बहुत प्रशंसा क्या करूँ, मैं प्रभु बहुत अजान।
पूजाविधि जानूँ नहीं, सरन राखि भगवान॥

●

## दर्शन-स्तुति

प्रभु पतित-पावन मैं अपावन, चरण आयो सरन जी।
यो विरद आप निहार स्वामी, मेट जामन मरनजी॥

तुम ना पिछान्याआन मान्या, देव विविध प्रकार जी।
या बुद्धिसेती निज न जान्यो, भ्रमगिन्यो हितकार जी॥

भव-विकट-वन में करम बैरी, ज्ञान-धन मेरो हर्‌यो।
तब इष्ट भूल्यो भ्रष्टहोय, अनिष्ट-गति धरतो फिर्‌यो॥

धन घड़ी यों धन दिवस यों ही, धन जनम मेरो भयो।
अब भाग मेरो उदय आयो, दरश प्रभुजी को लख लयो॥

छवि वीतरागी नगन मुद्रा, दृष्टि नासापै धरैं।
वसु प्रातिहार्य अनंतगुण युत, कोटि रवि छवि को हरैं॥

मिटगयो तिमिर मिथ्यात्व मेरो, उदय रवि आतम भयो।
मो उर हरष ऐसो भयो, मनु रंक चिंतामणी लयो॥

मैं हाथ जोड़ नवाय मस्तक, वीनऊँ तुव चरणजी।
सर्वोत्कृष्ट त्रिलोकपतिजिन, सुनहु तारनतरन जी॥

जाचूँ नहीं सुरवास पुनि, नर राज परिजन साथ जी।
'बुध' जाचहूँ तुमभक्ति भवभव, दीजिये शिवनाथ जी॥

●

# स्तुति

सकल ज्ञेय ज्ञायक तदपि, निजानन्द-रस-लीन।
सो जिनेन्द्र जयवंत नित, अरि-रज-रहस विहीन॥

जय वीतराग विज्ञान-पूर, जय मोह-तिमिर को हरन सूर।
जय ज्ञान अनंतानंत धार, दृग-सुख-वीरज-मण्डित अपार॥

जय परम शांति मुद्रा समेत, भवि-जन को निज अनुभूति हेत
भवि-भागन वच जोगे वशाय, तुम ध्वनि ह्वै सुनि विभ्रम नशाय॥

तुम गुण चिंतत निज-पर-विवेक, प्रगटै विघटै आपद अनेक।
तुम जग-भूषण दूषण-वियुक्त, सब महिमायुक्त विकल्प-मुक्त॥

अविरुद्ध शुद्ध चेतनस्वरूप, परमात्म परम पावन अनूप।
शुभ-अशुभ विभाव अभाव कीन, स्वाभाविक परिणतिमय अछीन॥

अष्टादश दोष विमुक्त धीर, स्वचतुष्टयमय राजत गंभीर।
मुनि गणधरादि सेवत महंत, नव केवल-लब्धि-रमा धरंत॥

तुम शासन सेय अमेय जीव, शिव गये जाहिं जैहें सदीव।
भव-सागर में दुख छार वारि, तारन को और न आप टारि॥

यह लखि निज दुख-गद-हरण-काज, तुम ही निमित्त कारण इलाज।
जानें तातैं मैं शरण आय, उचरों निज दुख जो चिर लहाय॥

मैं भ्रम्यो अपनपों विसरि आप, अपनाये विधि-फल-पुण्य-पाप।
निजको परका कर्ता पिछान, पर में अनिष्टता इष्ट ठान॥
आकुलित भयो अज्ञान धारि, ज्यों मृग मृग-तृष्णा जानि वारि।
तन-परिणति में आपो चितार, कबहूँ न अनुभवो स्वपदसार॥
तुमको बिन जाने जो कलेश, पाये सो तुम जानत जिनेश।
पशु-नारक-नर-सुर-गति-मझार, भव धर-धर मर्‌यो अनंत बार॥
अब काललब्धि बलतैं दयाल, तुम दर्शन पाय भयो खुशाल।
मन शांतभयो मिटि सकल द्वन्द, चाख्यो स्वातमरस दुखनिकंद॥
तातैं अब ऐसी करहु नाथ, बिछुड़ै न कभी तुम चरण साथ।
तुम गुण गण को नहिं छेव देव, जग तारन को तुम विरद एव॥
आतम के अहित विषय कषाय, इनमें मेरी परिणति न जाय।
मैं रहूँ आप में आप लीन, सो करो होऊँ ज्यों निजाधीन॥
मेरे न चाह कछु और ईश, रत्नत्रय-निधि दीजे मुनीश।
मुझ कारज के कारन सु आप, शिव करहु-हरहु मम मोह-ताप॥
शशि शांति करन तप हरन हेत, स्वयमेव तथा तुम कुशल देत।
पीवत पियूष ज्यों रोग जाय, त्यों तुम अनुभवतैं भव नशाय॥
त्रिभुवन तिहुँकाल मंझार कोय, नहिं तुम बिन निज सुखदाय होय।
मो उर यह निश्चय भयो आज, दुख जलधि उतारन तुम जिहाज॥

दोहा

तुम गुणगण-मणिगणपति, गणत न पावहिं पार।
'दौल' स्वल्प-मति किम कहै, नमूँ त्रियोग संभार॥

## गुरुदेव-स्तुति

अहो! जगतगुरु देव, सुनियो अरज हमारी।
तुम प्रभु दीनदयाल, मैं दुखिया संसारी॥

इस भव वन के माहिं, काल अनादि गमायो।
भ्रम्यो चहूँगति माहिं, सुख नहिं, दुख बहु पायो॥

कर्म महारिपु जोर, एक न काम करै जी।
मन मान्या दुख देहि, काहूसों नाहिं डरै जी॥

कबहूँ इतर निगोद, कबहूँ, नरक दिखावे।
सुर-नर-पशुगति माहिं, बहुविधि नाच-नचावे॥

प्रभु! इनको परसंग, भव-भव माहिं बुरो जी।
जे दुख देखे देव! तुमसों नाहिं दुरो जी॥

एक जनम की बात, कहि ना सकों, सुनि स्वामी।
तुम अनन्त पर्याय, जानत अन्तरयामी॥

मैं तो एक अनाथ, ये मिलि दुष्ट घनेरे।
कियो बहुत बेहाल, सुनियो साहिब मेरे॥

ज्ञान महानिधि लूटि, रंक निबल करि डार्‌यो।
इन ही तुम मुझ माहिं, हे जिन! अंतर पार्‌यो॥

पाप पुण्य मिल दोय, पायनि बेड़ी डारी।
तन कारागृह माहिं, मोहि दिये दुख भारी॥

इनको नेक विगार, मैं कछु नाहिं कियो जी।
बिन कारण जगबन्धु! बहुविधि बैर लियो जी॥

अब आयो तुम पास सुनि जिन सुजस तिहारो।
नीति-निपुन महाराज कीजे न्याय हमारो॥

दुष्टन देहु निकार, साधुन को रख लीजे।
विनवै 'भूधरदास' हे प्रभु! ढील न कीजे॥

●

## देव-स्तुति

वीतराग सर्वज्ञ हितंकर, भविजन की अब पूरो आस।
ज्ञान भानु का उदय करो, मम मिथ्यातम का होय विनास॥

जीवों की हम करुणा पालें, झूठ वचन नहीं कहें कदा।
परधन कबहुँ न हरहूँ स्वामी, ब्रह्मचर्य व्रत रखें सदा॥

तृष्णा लोभ बढ़े न हमारा, तोष सुधा नित पिया करें।
श्री जिनधर्म हमारा प्यारा, तिस की सेवा किया करें॥

दूर भगावें बुरी रीतियाँ, सुखद रीति का करें प्रचार।
मेल मिलाप बढ़ावें हम सब, धर्मोन्नति का करें प्रचार॥

सुख-दुख में हम समता धारें, रहें अचल जिमि सदा अटल।
न्याय मार्ग को लेश न त्यागें, वृद्धि करें निज आतमबल॥

अष्ट करम जो दुःख हेतु हैं, तिनके क्षय का करें उपाय।
नाम आपका जपें निरन्तर, विघ्न शोक सब ही टल जाय॥

आतम शुद्ध हमारा होवे, पाप मैल नहिं चढ़े कदा।
विद्या की हो उन्नति हम में, धर्म ज्ञान हू बढ़े सदा॥

हाथ जोड़कर शीश नवावें, तुम को भविजन खड़े खड़े।
यह सब पूरो आस हमारी, चरण शरण में आन पड़े॥

# दर्शन-स्तुति

अति पुण्य उदय मम आया, प्रभु तुमरा दर्शन पाया।
अब तक तुमको बिन जाने, दुख पाये निज गुण हाने ॥
पाये अनंते दुःख अब तक, जगत को निज जानकर।
सर्वज्ञ भाषित जगत हितकर, धर्म नहिं पहिचान कर ॥
भव बंधकारक सुखप्रहारक, विषय में सुख मानकर।
निज पर विवेचक ज्ञानमय, सुखनिधि-सुधा नहिं पानकर ॥1॥

तब पद मम उर में आये, लखि कुमति विमोह पलाये।
निज ज्ञान कला उर जागी, रुचि पूर्ण स्वहित में लागी ॥
रुचि लगी हित में आत्म के, सतसंग में अब मन लगा।
मन में हुई अब भावना, तब भक्ति में जाऊँ रंगा ॥
प्रिय वचन की हो टेव, गुणिगण गान में ही चित पगैं।
शुभ शास्त्र का नित हो मनन, मन दोष वादनतैं भगै ॥2॥

कब समता उर में लाकर, द्वादश अनुप्रेक्षा भाकर।
ममतामय भूत भगाकर, मुनिव्रत धारूँ वन जाकर॥
धरकर दिगम्बर रूप कब, अठ-बीस गुण पालन करूँ।
दो-बीस परिषह सह सदा, शुभ धर्म दश धारन करूँ ॥

तप तपूँ द्वादश विधि सुखद नित, बंध आस्रव परिहरूँ।
अरु रोकि नूतन कर्म संचित, कर्म रिपुकों निर्जरूँ ॥3॥

कब धन्य सुअवसर पाऊँ, जब निज में ही रम जाऊँ।
कर्तादिक भेद मिटाऊँ, रागादिक दूर भगाऊँ ॥
कर दूर रागादिक निरंतर, आत्म को निर्मल करूँ।
बल ज्ञान दर्शन सुख अतुल, लहि चरित क्षायिक आचरूँ ॥
आनन्दकन्द जिनेन्द्र बन, उपदेश को नित उच्चरूँ।
आवै 'अमर' कब सुखद दिन, जब दुःखद भवसागर तरूँ ॥4॥

●

# वैराग्य-भावना

बीज राख फल भोगवै, ज्यों किसान जगमाहिं।
त्यों चक्री नृप सुख करै, धर्म बिसारै नाहिं॥

इहविधि राज करै नरनायक, भोगैं पुण्य विशाल।
सुखसागर में रमत निरंतर, जात न जान्यौ काल॥

एक दिवसशुभ करम-संजोगे क्षेमंकर मुनि वंदे।
देखत शिरीगुरुके पदपंकज, लोचनअलि आनन्दे॥

तीन प्रदच्छन दे सिर नायौ, करि पूजा थुति कीनी।
साधु-समीप विनयकर बैठ्यो, चरनन में दिठि दीनी॥

गुरुउपदेश्यौ धरम-शिरोमणि, सुन राजा वैरागे।
राजरमा, वनितादिक, जे रस, ते रस बेरस लागे॥

मुनिसूरजकथनी किरणावलि, लगत भरमबुधि भागी।
भव तन भोग सरूप विचार्यौ, परमधरम अनुरागी॥

इह संसार महावन भीतर, भरमत ओर न आवै।
जामन मरन जरा दव दाझ्यौ, जीव महादुख पावै॥

कबहूं जाय नरक थिति भुंजै, छेदन भेदन भारी।
कबहूँ पशु परजाय धरै तहँ, बधबंधन भयकारी॥

सुरगति में पर संपति देखे, राग उदय दुख होये।
मानुषयोनि अनेक विपतिमय, सर्वसुखी नहिं कोई॥

कोई इष्ट वियोगी विलखै, कोई अनिष्ट संयोगी।
कोई दीन-दरिद्री विलखे, कोई तन के रोगी॥

किसही घर कलिहारी नारी, कै बैरी सम भाई।
किसही के दुख बाहिर दीखें, किसही उर दुचिताई॥

कोई पुत्र बिना नित झूरे, होय मरै तब रोवै।
खोटी संततिसों दुख उपजै, क्यों प्रानी सुख सोवै॥

पुण्य उदय जिनके तिनके भी, नाहिं सदा सुख साता।
यों जगवास जथारथ देखत, सब दीखै दुखदाता॥

जो संसार विषैं सुख होता, तीर्थंकर क्यों त्यागे।
काहेको शिवसाधन करते, संजमसों अनुरागे॥

देह अपावन अथिर घिनावन, यामें सार न कोई।
सागर के जलसों शुचि कीजै, तौ भी शुद्ध नहिं होई॥

सात कुधातुमई मलमूरत, चाम लपेटी सोहै।
अंतर देखत या सम जग में, और अपावन को है॥

नवमलद्वार स्रवैं निशि बासर, नाम लिये घिन आवे।
व्याधि उपाधि अनेक जहाँ तहँ, कौन सुधी सुखपावै॥

पोषत तौ दुख दोष करै अति, सोषत सुखउपजावै।
दुर्जन-देह-सुभाव बराबर, मूरख प्रीति बढ़ावै॥

राचन-जोग स्वरूप न याकौ, विरचन-जोग सही है।
यह तन पाय महातप कीजे, यामें सार यही है॥

भोग बुरे भवरोग बढ़ावे, बेरी हैं जग जीके।
बेरस होंय विपाक समय अति, सेवत लागैं नीके॥

वज्र-अगिनि विष सों विषधर सों, ये अधिके दुखदाई।
धर्म-रतन के चोर चपल अति, दुर्गति-पंथ सहाई॥

मोह-उदय यह जीव अज्ञानी, भोग भले कर जानैं।
ज्यों कोई जन खाय धतूरा, सो सब कंचन मानैं॥

ज्यों ज्यों भोग संजोग मनोहर, मनवांछित जन पावै।
तृष्णा नागिन त्यों-त्यों डंके, लहर जहर की आवै॥

मैं चक्रीपद पाय निरंतर, भोगे भोग घनेरे।
तौ भी तनिक भये नहिं पूरन, भोग मनोरथ मेरे॥

राजसमाज महा अघ-कारण, बैर बढ़ावन-हारा।
वेश्या-सम लछमी अतिचंचल, याका कौन पत्यारा॥

मोह-महा-रिपु बैर विचार्‌यो, जग-जिय संकट डारे।
घर-कारागृह वनिता बेड़ी, परिजन जन रखवारे॥

सम्यक्दर्शन ज्ञान चरण तप, ये जिय के हितकारी।
ये ही सार असार और सब, यह चक्री चितधारी॥
छोड़े चौदह रतन नवों निधि, अरु छोड़े संग साथी।
कोटि अठारह घोड़े छोड़े, चौरासी लख हाथी॥
इत्यादिक संपति बहु तेरी, जीरणतृण-सम त्यागी।
नीति विचार नियोगी सुत कों, राज दियो बड़भागी॥
होय निशल्य अनेक नृपति संग, भूषण वसन उतारे।
श्रीगुरु चरण धरी जिन-मुद्रा, पंच महाव्रत धारे॥
धनि यह समझ सुबुद्धि जगोत्तम, धनि यह धीरज धारी।
ऐसी संपत्ति छोड़ बसे वन, तिन पद धोक हमारी॥

दोहा

परिग्रहपोट उतार सब, लीनों चारित पंथ।
निज स्वभाव में थिर भये, वज्रनाभि निरग्रंथ॥

●

## बारह-भावना

वन्दूँ श्री अरहन्त पद, वीतराग विज्ञान।
वरणूँ बारह भावना, जग जीवन हित जान ॥1॥

कहाँ गये चक्री जिन जीता, भरत खण्ड सारा।
कहाँ गये वह राम अरु लछमन, जिन रावण मारा ॥
कहाँ कृष्ण रुक्मिणी सतभामा, अरु सम्पत्ति सगरी।
कहाँ गये वह रङ्ग महल अरु, सुवरन की नगरी ॥2॥

नहीं रहे वह लोभी कौरव, जूझ मरे रन में।
गये राज तज पांडव वन को, अग्नि लगी तन में ॥
मोह नींद से उठ रे चेतन, तुझे जगावन को।
हो दयाल उपदेश करें, गुरु बारह भावन को ॥3॥

### अनित्य भावना

सूरज चाँद छिपै निकले, ऋतु फिर-फिर कर आवे।
प्यारी आयु ऐसी बीते, पता नहीं पावे ॥
पर्वत पतित नदी सरिता जल, बह कर नहिं हटता।
स्वांस चलत यों घटे काठ ज्यों, आरे सों कटता ॥4॥

ओस बूँद ज्यों गले धूप में, वा अञ्जुलि पानी।
छिन-छिन यौवन छीन होत है, क्या समझे प्रानी॥
इन्द्रजाल आकाश नगर सम, जग सम्पत्ति सारी।
अथिर रूप संसार विचारो, सब नर अरु नारी॥5॥

## अशरण भावना

काल सिंह ने मृग चेतन को, घेरा भव वन में।
नहीं बचावन हारा कोई, यों समझो मन में॥
मंत्र यंत्र सेना धन सम्पत्ति, राज पाट छूटे।
वश नहिं चलता काल लुटेरा, काय नगरि लूटे॥6॥

चक्र रतन हलधर सा भाई, काम नहीं आया।
एक तीर के लगत कृष्ण की, विनश गई काया॥
देव धर्म गुरु शरण जगत में, और नहीं कोई।
भ्रम से फिरे भटकता चेतन, यूँ ही उमर खोई॥7॥

## संसार भावना

जनम-मरण अरु जरा रोग से, सदा दुःखी रहता।
द्रव्य क्षेत्र अरु काल भाव भव, परिवर्तन सहता॥
छेदन भेदन नरक पशु गति, वध बन्धन सहना।
राग उदय से दुःख सुरगति में, कहाँ सुखी रहना॥8॥

भोगि पुण्य फल हो इक इन्द्री, क्या इसमें लाली।
कुतवाली दिन चार वही फिर, खुरपा अरु जाली॥
मानुष जन्म अनेक विपतिमय, कहीं न सुख देखा।
पञ्चम गति सुख मिले, शुभाशुभ का मेटो लेखा॥9॥

## एकत्व भावना

जन्मे मरे अकेला चेतन, सुख दुःख का भोगी।
और किसी का क्या इक दिन, यह देह जुदी होगी॥
कमला चलत न पैंड जाय, मरघट तक परिवारा।
अपने अपने सुख को रोवे, पिता-पुत्र दारा॥10॥

ज्यों मेले में पन्थी जन मिलि, नेह फिरैं धरते।
ज्यों तरुवर पै रैन बसेरा, पन्छी आ करते॥
कोस कोई दो कोस कोई उड़, फिर थक-थक हारै।
जाय अकेला हंस सङ्ग में, कोई न पर मारै॥11॥

## अन्यत्व भावना

मोह रूप मृगतृष्णा जल में, मिथ्या जल चमके।
मृग चेतन नित भ्रम में उठ-उठ, दौड़े थक-थक के॥
जल नहिं पावे प्राण गमावे, भटक-भटक मरता।
वस्तु पराई माने अपनी, भेद नहीं करता॥12॥

तू चेतन अरु देह अचेतन, यह जड़ तू ज्ञानी।
मिले अनादि यतन तैं बिछुड़े, ज्यों पय अरु पानी॥
रूप तुम्हारा सबसों न्यारा, भेद ज्ञान करना।
जोलों पौरुष थके न तोलों, उद्यम सों चरना॥13॥

## अशुचि भावना

तू नित पोखे यह सूखे ज्यों, धोवे त्यों मैली।
निश दिन करे उपाय देह का, रोग दशा फैली॥

मात पिता रज वीरज मिलकर, बनी देह तेरी।
मांस हाड़ नश लहू राध की, प्रगट व्याधि घेरी ॥14॥

काना पौण्डा पड़ा हाथ यह, चूंसे तो रोवे।
फले अनन्त जु धर्म ध्यान की, भूमि विषै बोवे ॥
केसर चन्दन पुष्प सुगन्धित, वस्तु देख सारी।
देह परसतैं होय अपावन, निश दिन मल झारी ॥15॥

## आस्रव भावना

ज्यों सर जल आवत मोरी त्यों, आस्रव कर्मन को।
दर्वित जीव प्रदेश गहे जब, पुद्‌गल भरमन को ॥
भावित आस्रव भाव शुभाशुभ, निश दिन चेतन को।
पाप पुण्य के दोनों करता, कारण बन्धन को ॥16॥

पन मिथ्यात योग पन्द्रह, द्वादश अविरत जानो।
पंच रु बीस कषाय मिले सब, सत्तावन मानो ॥
मोह भाव की ममता टारे, पर परिणति खोते।
करे मोख का यतन निरास्रव, ज्ञानी जन होते ॥17॥

## संवर भावना

ज्यों मोरी में डाट लगावे, तब जल रुक जाता।
त्यों आस्रव को रोके संवर, क्यों नहिं मन लाता ॥
पञ्च महाव्रत समिति गुप्तिकर, वचन काय मन को।
दशविध धर्म परीषह बाईस, बारह भावन को ॥18॥

यह सब भाव सतावन मिलकर, आस्रव को खोते।
सुपन दशा से जागो चेतन, कहाँ पड़े सोते॥
भाव शुभाशुभ रहित शुद्धि, भावन संवर पावे।
डांट लगत यह नाव पड़ी, मंझधार पार जावे॥19॥

## निर्जरा भावना

ज्यों सरवर जल रुका सूखता, तपन पड़े भारी।
संवर रोके कर्म निर्जरा, है सोखन हारी॥
उदय भोग सविपाक समय, पक जाय आम डाली।
दूजी है अविपाक पकावे, पाल विषै माली॥20॥

पहली सबके होय, नहीं कुछ सरे काम तेरा।
दूजी करे जु उद्यम करके, मिटे जगत फेरा॥
संवर सहित करो तप प्रानी, मिले मुक्ति रानी।
इस दुलहिन की यही सहेली, मानो सब ज्ञानी॥21॥

## लोक भावना

लोक अलोक आकाश माहिं थिर, निराधार जानो।
पुरुष रूप कर कटी भये षट् द्रव्यन सों मानो॥
इसका कोई न करता हरता, अमिट अनादि है।
जीव अरु पुद्गल नाचे यामें, कर्म उपाधि है॥22॥

पाप पुण्य सों जीव जगत में, नित सुख दुःख भरता।
अपनी करनी आप भरे सिर औरन के धरता॥

मोह कर्म को नाश मेटकर, सब जग की आशा।
निज पद में थिर होय लोक के, शीश करो वासा॥23॥

## बोधिदुर्लभ भावना

दुर्लभ है निगोद से थावर, अरु त्रस गति पानी।
नर काया को सुरपति तरसे, सो दुर्लभ प्राणी॥
उत्तम देश सुसंगति दुर्लभ, श्रावक कुल पाना।
दुर्लभ सम्यक् दुर्लभ संयम, पंचम गुण ठाना॥24॥

दुर्लभ रत्नत्रय आराधन, दीक्षा का धरना।
दुर्लभ मुनिवर को व्रत पालन, शुद्ध भाव करना॥
दुर्लभ तैं दुर्लभ है चेतन, बोधि ज्ञान पावे।
पाकर केवलज्ञान, नहीं फिर इस भव में आवे॥25॥

## धर्म भावना

एकान्तवाद के धारी जग में, दर्शन बहुतेरे।
कल्पित नाना युक्ति बनाकर, ज्ञान हरें मेरे॥
हो सुछन्द सब पाप करें सिर, करता के लावे।
कोई छिनक कोई करता से, जग में भटकावे॥26॥

वीतराग सर्वज्ञ दोष बिन, श्री-जिन की वानी।
सप्त तत्व का वर्णन जामें, सब को सुख दानी॥
इनका चिंतवन बार-बार कर, श्रद्धा उर धरना।
मंगत इसी जतन तें इक दिन, भवसागर तरना॥27॥

## बारह-भावना

राजा राणा छत्रपति, हाथिन के असवार।
मरना सबको एक दिन, अपनी-अपनी बार॥

दल बल देवी देवता, मात-पिता परिवार।
मरती बिरियाँ जीव को, कोऊ न राखन हार॥

दाम बिना निर्धन दुखी, तृष्णा वश धनवान।
कहूँ न सुख संसार में, सब जग देख्यो छान॥

आप अकेला अवतरे, मरै अकेला होय।
यूँ कबहुँ इस जीव को, साथी सगा न कोय॥

जहाँ देह अपनी नहीं, तहाँ न अपना कोय।
घर संपत्ति पर प्रगट ये, पर हैं परिजन लोय॥

दिपै चाम चादर मढ़ी, हाड़ पींजरा देह।
भीतर या सम जगत में, और नहीं घिन गेह॥

मोह नींद के जोर, जगवासी घूमें सदा।
कर्म चोर चहुँ ओर, सरवस लूटैं सुध नहीं॥

सतगुरु देय जगाय, मोहनींद जब उपशमै।
तब कछु बनहिं उपाय, कर्म चोर आवत रुकैं॥

ज्ञान-दीप तप-तेल भर, घर शोधैं भ्रम छोर।
या विधि बिन निकसैं नहीं, बैठे पूरब चोर॥

पंच महाव्रत संचरन, समिति पंच परकार।
प्रबल पंच इन्द्रिय विजय, धार निर्जरा सार॥

चौदह राजु उतंग नभ, लोक पुरुष संठान।
तामें जीव अनादि तें, भरमत हैं बिन ज्ञान॥

धन कन कंचन राज सुख, सबहिं सुलभकर जान।
दुर्लभ है संसार में, एक जथारथ ज्ञान॥

जाँचे सुरतरु देय सुख, चिन्तत चिन्ता रैन।
बिन जाँचे बिन चिन्तये, धर्म सकल सुख दैन॥

●

## आलोचना-पाठ

वंदौं पाँचों परम गुरु, चौबीसों जिनराज।
करूँ शुद्ध आलोचना, शुद्धिकरण के काज॥

सुनिये जिन अरज हमारी, हम दोष किये अति भारी।
तिनकी अब निर्वृत्ति काज, तुमशरन लही जिनराज॥

इक बे ते चउ इन्द्री वा, मनरहित-सहित जे जीवा।
तिनकी नहिं करुणा धारी, निरदई है घात विचारी॥

समरंभ समारंभ आरंभ, मन वच तन कीने प्रारंभ।
कृत कारित मोदन करिकै, क्रोधादि चतुष्टय धरिकै॥

शत आठ जु इमि भेदन तैं, अघ कीने परिछेदन तैं।
तिनकी कहुँ कोलौं कहानी, तुम जानत केवलज्ञानी॥

विपरीत एकांत विनयके, संशय अज्ञान कुनयके।
वश होय घोर अघ कीने, वचतैं नहिं जाय कहीने॥

कुगुरुन की सेवा कीनी, केवल अदयाकरि भीनी।
याविधि मिथ्यात बढ़ायो, चहुँगति मधिदोष उपायो॥

हिंसा पुनि झूठ जु चोरी, परवनिता सौं दृगजोरी।
आरंभ परिग्रह भीनो, पन पाप जु या विधि कीनो॥

सपरस रसना घ्रानन को, चखु कान विषय-सेवन को।
बहु करम किये मनमाने, कछु न्याय-अन्याय न जाने॥

फल पंच उदंबर खाये, मधु मांस मद्य चित चाये।
नहिं अष्ट मूलगुण धारे, विसयन सेये दुखकारे॥

दुइवीस अभख जिन गाये, सो भी निशदिन भुंजाये।
कछु भेदाभेद न पायो, ज्यों-त्योंकरि उदर भरायो॥

अनंतानुबंधी जु जानो, प्रत्याख्यान अप्रत्याख्यानो।
संज्वलन चौकड़ी गुनिये, सब भेद जु षोडश मुनिये॥

परिहास अरति रतिशोक, भय ग्लानि तिवेद संजोग।
पनवीस जु भेद भये इम, इनके वश पाप किये हम॥

निद्रावश शयन कराई, सुपने मधि दोष लगाई।
फिरजागि विषयवन धायो, नाना विध विषफल खायो॥

आहार विहार निहारा, इनमें नहिं जतन विचारा।
बिन देखी धरी उठाई, बिन शोधी वस्तु जु खाई॥

तब ही परमाद सतायो, बहुविधि विकलप उपजायो।
कछु सुधिबुधि नाहिं रही है, मिथ्यामति छाय गयी है॥

मरजादा तुम ढिंग लीनी, ताहू में दोस जु कीनी।
भिनभिन अब कैसे कहिये, तुम ज्ञानविषैं सब पहिये॥

हा हा! मैं दुठ अपराधी, त्रसजीवन-राशि विराधी।
थावर की जतन न कीनी, उरमें करुना नहिं लीनी॥

पृथिवी बहु खोद कराई, महलादिक जागां चिनाई।
पुनि विनगाल्यो जल ढोल्यो, पंखातैं पवन बिलोल्यो ॥

हा हा! मैं अदयाचारी, बहु हरित काय जु विदारी।
तामधि जीवन के खंदा, हम खाये धरि आनंदा ॥

हा हा! परमाद बसाई, बिन देखे अगनि जलाई।
तामधि जे जीव जु आये, ते हू परलोक सिधाये ॥

बींध्योअन राति पिसायो, ईंधन बिन-सोधि जलायो।
झाडू ले जागां बुहारी, चिंवटाऽदिक जीव बिदारी ॥

जल छानि जिवानी कीनी, सो हू पुनि डारि जु दीनी।
नहिं जल-थानक पहुँचाई, किरिया बिन पाप उपाई ॥

जलमल मोरिन गिरवायो, कृमिकुल बहुघात करायो।
नदियन बिच चीर धुवाये, कोसन के जीव मराये ॥

अन्नादिक शोध कराई, तामैं जु जीव निसराई।
तिनको नहिं जतन कराया, गलियारे धूप डराया ॥

पुनि द्रव्य कमावन काजे, बहु आरंभ हिंसा साजे।
किये तिसनावश अघ भारी, करुना नहिं रंच विचारी ॥

इत्यादिक पाप अनंता, हम कीने श्री भगवंता।
संतति चिरकाल उपाई, बानी तैं कहिय न जाई ॥

ताको जु उदय अब आयो, नानाविध मोहि सतायो।
फल भुंजत जिय दुख पावै, वचतैं कैसे करि गावै ॥

तुम जानत केवलज्ञानी, दुख दूर करो शिवथानी।
हम तुमरी शरण लही है जिनतारन विरद सही है॥

जो गांवपती इक होवे, सो भी दुखिया दुख खोवै।
तुम तीन भुवन के स्वामी, दुख मेटहु अंतरजामी॥

द्रोपदि को चीर बढ़ायो, सीता प्रति कमल रचायो।
अंजन से किये अकामी, दुख मेटो अंतरजामी॥

मेरे अवगुन न चितारो, प्रभु अपनो विरद निहारो।
सब दोषरहित करि स्वामी, दुख मेटहु अंतरजामी॥

इंद्रादिक पद नहिं चाहूँ, विषयनि में नाहिं लुभाऊँ।
रागादिक दोष हरीजे, परमातम निजपद दीजे॥

दोहा

दोष रहित जिनदेव जी, निजपद दीज्यो मोय।
सब जीवन के सुख बढ़ै, आनंद-मंगल होय॥

अनुभव माणिक पारखी, 'जौहरी', आप जिनन्द।
ये ही वर मोहि दीजिये, चरन-शरन आनन्द॥

●

# सामायिक पाठ

प्रेम भाव हो सब जीवों से, गुणी जनों में हर्ष प्रभो।
करुणा-स्रोत बहे दुखियों पर, दुर्जन में मध्यस्थ विभो॥
यह अनन्त बल-शील आतमा, हो शरीर से भिन्न प्रभो।
ज्यों होती तलवार म्यान से, वह अनन्त बल दो मुझको॥

सुख-दुख वैरी बन्धु वर्ग में, कांच-कनक में समता हो।
वन-उपवन प्रासाद कुटी में, नहीं खेद नहिं ममता हो॥
जिस सुन्दरतम पथ पर चलकर, जीते मोह मान मन्मथ।
वह सुन्दर पथ ही प्रभु! मेरा, बना रहे अनुशीलन पथ॥

एकेंद्रिय आदिक प्राणी की, यदि मैंने हिंसा की हो।
शुद्ध हृदय से कहता हूँ वह, निष्फल हो दुष्कृत्य प्रभो॥
मोक्षमार्ग प्रतिकूल प्रवर्तन, जो कुछ किया कषायों से।
विपथ-गमन सब कालुष मेरे, मिट जावें सद्भावों से॥

चतुर वैद्य विष विक्षत करता, त्यों प्रभु! मैं भी आदि उपांत।
अपनी निन्दा आलोचन से, करता हूँ पापों को शान्त॥
सत्य अहिंसादिक व्रत में भी, मैंने हृदय मलीन किया।
व्रत विपरीत-प्रवर्तन करके, शीलाचरण विलीन किया॥

कभी वासना की सरिता का, गहन सलिल मुझ पर छाया।
पी पीकर विषयों की मदिरा, मुझमें पागलपन आया॥
मैंने छली और मायावी, हो असत्य-आचरण किया।
पर-निन्दा गाली चुगली जो, मुँह पर आया वमन किया॥

निरभिमान उज्ज्वल मानस हो, सदा सत्य का ध्यान रहे।
निर्मल-जल की सरिता सदृश, हिय में निर्मल ज्ञान बहे॥
मुनि चक्री शक्री के हिय में, जिस अनन्त का ध्यान रहे।
गाते वेद पुराण जिसे वह, परम देव मम हृदय रहे॥

दर्शन-ज्ञान स्वभावी जिसने, सब विकार ही वमन किये।
परम ध्यान गोचर परमातम, परम देव मम हृदय रहे॥
जो भव-दुःख का विध्वंसक है, विश्व-विलोकी जिसका ज्ञान।
योगी-जन के ध्यानगम्य वह, बसे हृदय में देव महान॥

मुक्ति-मार्ग का दिग्दर्शक है, जन्म मरण से परम अतीत।
निष्कलंक त्रैलोक्य-दर्शि वह, देव रहे मम हृदय समीप॥
निखिल विश्व के वशीकरण में, राग रहे ना द्वेष रहे।
शुद्ध अतींद्रिय ज्ञानस्वरूपी, परम देव मम हृदय रहे॥

देख रहा जो निखिल विश्व को, कर्म-कलंक-विहीन विचित्र।
स्वच्छ विनिर्मल निर्विकार वह, देव करे मम हृदय पवित्र॥
कर्म-कलंक अछूत न जिसका, कभी छू सके दिव्य प्रकाश।
मोह तिमिरको भेद चला जो, परमशरण मुझको वह आप्त॥

जिसकी दिव्य ज्योति के आगे, फीका पड़ता सूर्य प्रकाश।
स्वयं ज्ञानमय स्वपर-प्रकाशी, परमशरण मुझको वह आप्त॥
जिसके ज्ञानरूप दर्पण में, स्पष्ट झलकते सभी पदार्थ।
आदि-अंत से रहित शांत शिव, परम-शरण मुझको वह आप्त॥

जैसे अग्नि जलाती तरु को, तैसे नष्ट हुए स्वयमेव।
भय-विषाद चिन्ता सब जिसके, परमशरण मुझको वह देव॥
तृण चौकी शिल शैलशिखर नहिं, आत्म समाधि के आसन।
संस्तर पूजासंग सम्मिलन, नहीं समाधी के साधन॥

इष्ट-वियोग अनिष्ट योग में, विश्व मनाता है मातम।
हेय सभी हैं विषय वासना, उपादेय निर्मल आतम॥
बाह्य जगत कुछ भी नहिं मेरा, और न बाह्य जगत का मैं।
यह निश्चयकर छोड़ बाह्य को, मुक्ति हेतु नित स्वस्थ रमें॥

अपनी निधि तो अपने में है, बाह्य वस्तु में व्यर्थ प्रयास।
जग का सुख तो मृगतृष्णा है, झूठे हैं उसके पुरुषार्थ॥
अक्षय है शाश्वत है आत्मा, निर्मल ज्ञान स्वभावी है।
जो कुछ बाहर है सब पर है, कर्माधीन विनाशी है॥

तनसे जिसका ऐक्य नहीं, हो-सुत, तिय मित्रों से कैसे।
चर्म दूर होने पर तन में, रोम समूह रहें कैसे॥
महा कष्ट पाता जो करता, पर पदार्थ जड़ देह संयोग।
मोक्ष महल का पथ है सीधा, जड़ चेतन का पूर्ण वियोग॥

जो संसार पतन के कारण, उन विकल्प जालों को छोड़।
निर्विकल्प निर्द्वन्द्व आत्मा, फिर फिर लीन उसी में हो ॥
स्वयं किये जो कर्म शुभाशुभ, फल निश्चय ही वे देते।
करें आप फल देय अन्य तो, स्वयं किये निष्फल होते ॥

अपने कर्म सिवाय जीव को, कोई न फल देता कुछ भी।
पर देता है यह विचार तज, स्थिर हो छोड़ प्रमादी बुद्धि ॥
निर्मल सत्य शिवं सुन्दर है, 'अमित गति' वह देव महान।
शाश्वत निज में अनुभव करते, पाते निर्मल पद निर्वाण ॥

इन बत्तीस पदों से जो कोई, परमातम को ध्याते हैं।
सांची समायिक को पाकर, भवोदधि तिर जाते हैं ॥

●

## समाधिमरण भाषा

वन्दों श्री अरहंत परमगुरु जो सबको सुखदाई।
इस जग में दुःख जो मैं भुगते सो तुम जानो राई ॥
अब मैं अरज करूँ प्रभु तुमसे कर समाधि उर माहिं।
अन्त समय में यह वर माँगू सो दीजे जग राई ॥1॥

भव-भव में तन धार नये मैं भवभव शुभ सङ्ग पायो।
भव-भव में नृप रिद्धि लई मैं मात-पिता सुत थायो ॥
भव-भव में तन पुरुष-तनो धर, नारी हूँ तन लीनो।
भव-भव में मैं भयो नपुंसक, आतमगुण नहिं चीनो ॥2॥

भव-भव में सुरपदवी पाई, ताके सुख अति भोगे।
भव-भव मैं गति नरकतनी, दुःख पाये विधि योगे ॥
भव-भव में तिर्यंच योनिधर, पायो दुःख अति भारी।
भव-भव में साधर्मी जनको, सङ्ग मिल्यो हितकारी ॥3॥

भव-भव में जिनपूजन कीनी, दानसुपात्रहिं दीनो।
भव-भव में मैं समवसरण में, देख्यो जिनगुण भीनो ॥
एती वस्तु मिली भव भव में, सम्यकगुण नहिं पायो।
ना समाधियुत मरण कियो मैं, तातैं जग भरमायो ॥4॥

काल अनादि भयो जग भ्रमते, सदा कुमरणहिं कीनो।
एकबार हू सम्यकयुत मैं, निज आतम नहिं चीनो॥
जो निजपर को ज्ञान होय तो, मरण समय दुःख कांई।
देह विनासी मैं अविनाशी, जोतिस्वरूप सदाई॥5॥

विषयकषायनि के वश होकर, देह आपनो जान्यो।
कर मिथ्या सरधान हिये बिच, आतम नाहिं पिछान्यो॥
यों कलेश हियधार मरणकर, चारों गति भरमायो।
सम्यक्दर्शन-ज्ञान-चरन ये, हिरदे में नहिं लायो॥6॥

अब या अरज करूँ प्रभु सुनिये, मरण समय यह माँगो।
रोगजनित पीड़ा मत होवो, अरु कषाय मत जागो॥
ये मुझ मरणसमय दुःखदाता, इन हर साता कीजे।
जो समाधियुत मरण होय मुझ, अरु मिथ्यामद छीजे॥7॥

यह तन सात कुधातमई है, देखत ही घिन आवे।
चर्म लपेटी ऊपर सोहे, भीतर विष्टा पावे॥
अति दुर्गन्ध अपावन सों यह, मूरख प्रीति बढ़ावे।
देह विनासी जिय अविनासी, नित्यस्वरूप कहावे॥8॥

यह तन जीर्ण कुटीसम आतम, यातैं प्रीति न कीजे।
नूतन महल मिले जब भाई तब यामें क्या छीजे॥
मृत्यु होन से हानि कौन है, याको भय मत लावो।
समता से जो देह तजोगे, तो शुभतन तुम पावो॥9॥

मृत्यु मित्र उपकारी तेरो, इस अवसर के माहीं।
जीरन तन से देत नयो यह, या सम साहू नाहीं॥
या सेती इस मृत्यु समय पर, उत्सव अति ही कीजे।
क्लेशभाव को त्याग सयाने, समता भाव धरीजे॥10॥

जो तुम पूरब पुण्य किये हैं, तिनको फल सुखदाई।
मृत्यु मित्र बिन कौन दिखावे, स्वर्ग सम्पदा भाई॥
राग-रोष को छोड़ सयाने, सात व्यसन दुखदाई।
अन्त समय में समता धारो, परभव पन्थ सहाई॥11॥

कर्म महादुठ बैरी मेरो, तासेती दुःख पावे।
तन पिंजर में बन्द कियो मोहि, यासों कौन छुड़ावे॥
भूख तृषा दुःख आदि अनेकन, इस ही तन में गाढ़े।
मृत्युराज अब आय दया कर, तनपिंजर सों काढ़े॥12॥

नाना वस्त्राभूषण मैंने, इस तन को पहराये।
गन्ध सुगन्धित अतर लगाये, षट्रस अशन कराये॥
रात दिना मैं दास होय कर, सेव करी तन केरी।
सो तन मेरे काम न आयो, भूल रह्यो निधि मेरी॥13॥

मृत्युराज को शरन पाय तन, नूतन ऐसो पाऊँ।
जामें सम्यक्रतन तीन लहि, आठों कर्म खपाऊँ॥
देखो तन सम और कृतघ्नी, नाहिं सु या जगमाहीं।
मृत्यु समय में ये ही परिजन, सबही हैं दुखदाई॥14॥

यह सब मोह बढ़ावन हारे, जियको दुर्गतिदाता।
इनसे ममत निवारो जियरा, जो चाहो सुख-साता ॥
मृत्युकल्पद्रुम पाय सयाने, माँगो इच्छा जेती।
समता धरकर मृत्यु करो तो, पावो संपति तेती ॥15॥

चौ आराधन सहित प्राण तज, तो ये पदवी पावो।
हरि प्रतिहरि चक्री तीर्थेश्वर, स्वर्गमुकति में जावो ॥
मृत्यु कल्पद्रुम सम नहिं दाता, तीनों लोक मझारे।
ताको पाय कलेश करो मत, जन्म जवाहर हारे ॥16॥

इस तन में क्या राचे जियरा, दिन-दिन जीरन हो है।
तेजकांति बल नित्य घटत है, या सम अथिर सु को है ॥
पाँचों इन्द्री शिथिल भई अब, स्वास शुद्ध नहिं आवे।
तापर भी ममता नहिं छोडे, समता उर नहिं लावे ॥17॥

मृत्युराज उपकारी जियको, तनसों तोहि छुड़ावे।
नातर या तन वन्दीगृह में, पर्‌यो पर्‌यो बिललावे ॥
पुद्‌गल के परमाणू मिलि कै, पिण्डरूप तन भासी।
याहै मूरत मैं अमूरती, ज्ञान ज्योति गुणखासी ॥18॥

रोग-शोक आदिक जो वेदन, ते सब पुद्‌गललारे।
मैं तो चेतन व्याधि बिना नित, हैं सो भाव हमारे ॥
या तनसों इस क्षेत्र सम्बन्धी, कारण आन बन्यो है।
खान-पान दे याको पोष्यो, अब समभाव ठन्यो है ॥19॥

मिथ्यादर्शन आत्मज्ञान बिन, यह तन अपना जान्यो।
इन्द्रीभोग गिने सुख मैंने, आपो नाहिं पिछान्यो॥
तन विनाशतैं नाश जानि निज, यह अयान दुखदाई।
कुटुम आदि को अपना जान्यो, भूल अनादी छाई॥20॥

अब निज भेद जथारथ समझ्यो, मैं हूँ ज्योति-स्वरूपी।
उपजे विनसे सो यह पुद्गल, जान्यो याको रूपी॥
इष्टऽनिष्ट जेते सुख दुःख हैं, सो सब पुद्गल सागे।
मैं जब अपनो रूप विचारो, तब वे सब दुःख भागे॥21॥

बिन समता तन अनंत धरे मैं, तिनमें ये दुःख पायो।
शस्त्रघात तैं अनन्त बार मर, नाना-योनि भ्रमायो॥
बार अनन्तहि अग्नि माहि जर, मूवो सुमति न लायो।
सिंह व्याघ्र अहिअनन्त बार मुझ, नाना दुःख दिखायो॥22॥

बिन समाधि ये दुःख लहे मैं, अब उर समता आई।
मृत्युराज को भय नहिं माने, देवे तन सुखदाई॥
यातैं जब लग मृत्यु न आवे, तब लग जप तप कीजे।
जप तप बिन इस जग के माहीं, कोई भी ना सीझे॥23॥

स्वर्ग सम्पदा तपसों पावे, तपसों कर्म नसावे।
तपही सों शिवकामिनि-पति है, यासों तप चित लावे॥
अब मैं जानी समता बिन मुझ, कोऊ नाहिं सहाई।
मात-पिता-सुत बांधव तिरिया, ये सब हैं दुःखदाई॥24॥

मृत्यु समय में मोह करें, ये तातैं आरत हो है।
आरत तैं गति नीची पावे, यों लख मोह तज्यो है॥
और परिग्रह जेते जग में, तिन सों प्रीति न कीजे।
परभव में सङ्ग न चाले, नाहक आरत कीजे॥25॥

जे जे वस्तु लखत हैं ते पर, तिन सों नेह निवारो।
परगति में ये साथ न चाले, ऐसा भाव विचारो॥
जो परभव में सङ्ग चलें तुझ, तिन सों प्रीत सु कीजे।
पंच पाप तज समता धारो, दान चार विध दीजे॥26॥

दशलक्षणमय धर्म धरो उर, अनुकम्पा उर लावो।
षोडशकारण नित्य विचारो, द्वादश भावन भावो॥
चारों परवी प्रोषध कीजे, अशन रात को त्यागो।
समता धर दुरभाव निवारो, संयम सों अनुरागो॥27॥

अन्त समय में यह शुभ भावहिं, होवे आनि सहाई।
स्वर्ग मोक्ष फल तोहि दिखावे, ऋद्धि देहिं अधिकाई॥
खोटे भाव सकल जिय त्यागो, उर में समता लाके।
जा सेती गतिचार दूर कर, वसहु मोक्षपुर जाके॥28॥

मन थिरता करके तुम चिंतो, चौ आराधन भाई।
ये ही ताकों सुख की दाता, और हितू कोउ नाहीं॥
आगे बहु मुनिराज भये हैं, तिन गही थिरता भारी।
बहु उपसर्ग सहे शुभ पावन, आराधन उर धारी॥29॥

तिनमें कुछ इक नाम कहूँ मैं, सो सुन जिय चित लाके।
भावसहित अनुमोदे तासों, दुर्गति होय न ताके॥
अरु समता निज उरमें आवे, भाव अधीरज जावे।
यों निशदिन जो उन मुनिवर को, ध्यान हिये विच लावे॥30॥

धन्य-धन्य सुकुमाल महामुनि, कैसे धीरज धारी।
एक स्यालनी जुग बच्चाजुत, पाँव भख्यो दुःखकारी॥
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चित धारी।
तो तुमरे जिय कौन दुःख है, मृत्यु-महोत्सव भारी॥31॥

धन्य-धन्य जु सुकौशल स्वामी, व्याघ्री ने तन खायो।
तो भी श्रीमुनि नेक डिगे नहिं, आतम सों हित लायो॥
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चित धारी।
तो तुमरे जिय कौन दुःख है, मृत्यु-महोत्सव भारी॥32॥

देखो गजमुनि के शिर ऊपर, विप्र अगिनि बहु बारी।
शीश जले जिम लकड़ी तिनको, तो भी नाहिं चिगारी॥
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चित धारी।
तो तुमरे जिय कौन दुःख है, मृत्यु-महोत्सव भारी॥33॥

सनतकुमार मुनी के तन में, कुष्ट वेदना व्यापी।
छिन्न-भिन्न तन तासों हूवो, तब चिन्त्यो गुण आपी॥
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चित धारी।
तो तुमरे जिय कौन दुःख है, मृत्यु-महोत्सव भारी॥34॥

श्रेणिक सुत गङ्गा में डूब्यो, तब जिननाम चितार्‌यो।
धर सलेखना परिग्रह छोड्यो, शुद्ध भाव उर धार्‌यो॥
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चित धारी।
तो तुमरे जिय कौन दुःख है, मृत्यु-महोत्सव भारी॥35॥

समंतभद्र मुनिवर के तन में, क्षुधा वेदना आई।
तो दुःख में मुनि नेक न डिगियो, चिंत्यो निजगुण भाई॥
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चित धारी।
तो तुमरे जिय कौन दुःख है, मृत्यु-महोत्सव भारी॥36॥

ललित घटादिक तीस दोय मुनि, कौशांबी तट जानो।
नद्दी में मुनि बहकर डूबे, सो दुःख उन नहिं मानो॥
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चित धारी।
तो तुमरे जिय कौन दुःख है, मृत्यु-महोत्सव भारी॥37॥

धर्मघोष मुनि चम्पानगरी, बाह्य ध्यान धर ठाड़ो।
एक मास की कर मर्यादा, तृषा दुःख सह गाढो॥
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चित धारी।
तो तुमरे जिय कौन दुःख है, मृत्यु-महोत्सव भारी॥38॥

श्रीदतमुनि को पूर्वजन्म को, बैरी देव सु आके।
विक्रिय कर दुःख शीततनो सो, सह्यो साध मन लाके॥
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चित धारी।
तो तुमरे जिय कौन दुःख है, मृत्यु-महोत्सव भारी॥39॥

वृषभसेन मुनि उष्ण शिलापर, ध्यान धर्‌यो मनलाई।
सूर्यघाम अरु उष्ण पवन की, वेदन सहि अधिकाई॥
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चित धारी।
तो तुमरे जिय कौन दुःख है, मृत्यु-महोत्सव भारी॥40॥

अभयघोषमुनि काकन्दीपुर, महावेदना पाई।
बैरी चण्ड ने सब तन छेद्यो, दुख दीनो अधिकाई॥
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चित धारी।
तो तुमरे जिय कौन दुःख है, मृत्यु-महोत्सव भारी॥41॥

विद्युतचर ने बहु दुःख पायो, तो भी धीर न त्यागी।
शुभभावन सों प्राण तजे निज, धन्य और बड़भागी॥
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चित धारी।
तो तुमरे जिय कौन दुःख है, मृत्यु-महोत्सव भारी॥42॥

पुत्र चिलाती नामा मुनि को, बैरी ने तन घाता।
मोटे-मोटे कीट पड़े तन, तापर निज गुण राता॥
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चित धारी।
तो तुमरे जिय कौन दुःख है, मृत्यु-महोत्सव भारी॥43॥

दण्डकनामा मुनि की देही, बानों कर अरि भेदी।
तापर नेक डिगे नहिं वे मुनि, कर्म महारिपु छेदी॥
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चित धारी।
तो तुमरे जिय कौन दुःख है, मृत्यु-महोत्सव भारी॥44॥

अभिनन्दन मुनि आदि पाँच सौ, घानी पेलि जु मारे।
तो भी श्रीमुनि समताधारी, पूरबकर्म विचारे॥
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चित धारी।
तो तुमरे जिय कौन दुःख है, मृत्यु-महोत्सव भारी॥45॥

चाणकमुनि गौघर के माहीं, मूँद अगिनि परजाल्यो।
श्रीगुरु उर समभाव धारके, अपनो रूप सम्हाल्यो॥
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चित धारी।
तो तुमरे जिय कौन दुःख है, मृत्यु-महोत्सव भारी॥46॥

सातशतक मुनिवर दुःख पायो, हथनापुर में जानो।
बलि विप्र कृत घोर उपद्रव, सो मुनिवर नहिं मानो॥
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चित धारी।
तो तुमरे जिय कौन दुःख है, मृत्यु-महोत्सव भारी॥47॥

लोहमयी आभूषण गढके, ताते कर पहराये।
पाँचों पांडव मुनिके तनमें, तो भी नाहिं चिगाये॥
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चित धारी।
तो तुमरे जिय कौन दुःख है, मृत्यु-महोत्सव भारी॥48॥

और अनेक भये इस जग में, समता रस के स्वादी,
वे ही हमको हो सुखदाता, हर है टेव प्रमादी।
सम्यक्दर्शन ज्ञान चरन तप, ये आराधन चारों।
ये ही मोको सुखके दाता, इन्हें सदा उर धारों॥49॥

यों समाधि उरमाँहि लावो, अपनो हित जो चाहो।
तज ममता अरु आठों मद को, जोतिस्वरूपी ध्यावो॥
जो कोई नित करत पयानो, ग्रामांतर के काजे।
सो भी शकुन विचारे नीके, शुभ के कारण साजे॥50॥

मातपितादिक सर्व कुटुम सों, नीके शुकन बनावे।
हलदी धनिया पुङ्गी अक्षत, दूब दही फल लावे॥
एक ग्राम जाने के कारण, करें शुभाशुभ सारे।
जब परगति को करत पयानो, तब नहिं सोचौ प्यारे॥51॥

सर्वकुटुम जब रोवन लागे, तोहि रुलावें सारे।
ये अपशकुन करें सुन तोकों, तू यों क्यों न विचारे॥
अब परगति को चालत बिरियाँ, धर्मध्यान उर आनो।
चारों आराधन आराधो, मोहतनो दुःख हानो॥52॥

होय निःशल्य तजो सब दुविधा, आतम राम सुध्यावो।
जब परगति को करहु पयानो, परम तत्व उर लावो॥
मोहजाल को काट पियारे, अपनो रूप विचारो।
मृत्यु मित्र उपकारी तेरो, यों निश्चय उर धारो॥53॥

(दोहा)

मृत्यु महोत्सव पाठ को, पढो सुनो बुधिवान।
सरधा धर नित सुख लहो, 'सूरचन्द' शिवथान॥
पञ्च उभय नव एक नभ, संवत् सो सुखदाय।
आश्विन श्यामा सप्तमी, कह्यो पाठ मनलाय॥54॥

●

# मेरी-भावना

जिसने रागद्वेष-कामादिक जीते, सब जग जान लिया।
सब जीवों को मोक्ष मार्ग का, निष्पृह हो उपदेश दिया ॥
बुद्ध, वीर, जिन, हरि, हर, ब्रह्मा, या उसको स्वाधीन कहो।
भक्ति भाव से प्रेरित हो यह, चित्त उसी में लीन रहो ॥1॥

विषयों की आशा नहिं जिनके, साम्य-भाव धन रखते हैं।
निज-परके हित साधन में जो, निशदिन तत्पर रहते हैं॥
स्वार्थ त्याग की कठिन तपस्या, बिना खेद जो करते हैं।
ऐसे ज्ञानी साधु जगत के, दुख समूह को हरते हैं ॥2॥

रहे सदा सत्संग उन्हीं का, ध्यान उन्हीं का नित्य रहे।
उन्हीं जैसी चर्या में यह, चित्त सदा अनुरक्त रहे ॥
नहीं सताऊँ किसी जीव को, झूठ कभी नहीं कहा करूँ।
पर धन वनिता पर न लुभाऊँ, संतोषामृत पिया करूँ ॥3॥

अहंकार का भाव न रक्खूँ, नहीं किसी पर क्रोध करूँ।
देख दूसरों की बढ़ती को, कभी न ईर्ष्या-भाव धरूँ ॥
रहे भावना ऐसी मेरी, सरल सत्य व्यवहार करूँ।
बने जहाँ तक इस जीवन में, औरों का उपकार करूँ ॥4॥

मैत्री भाव जगत में मेरा, सब जीवों से नित्य रहे।
दीन-दुखी जीवों पर मेरे, उर से करुणा स्रोत बहे ॥
दुर्जन क्रूर-कुमार्ग रतों पर, क्षोभ नहीं मुझको आवे।
साम्यभाव रक्खूँ मैं उन पर, ऐसी परिणति हो जावे ॥5॥

गुणीजनों को देख हृदय में, मेरे प्रेम उमड़ आवे।
बने जहाँ तक उनकी सेवा, करके यह मन सुख पावे॥
होऊँ नहीं कृतघ्न कभी मैं, द्रोह न मेरे उर आवे।
गुण ग्रहण का भाव रहे नित, दृष्टि न दोषों पर जावे॥6॥

कोई बुरा कहो या अच्छा, लक्ष्मी आवे या जावे।
लाखों वर्षों तक जीऊँ या, मृत्यु आज ही आ जावे॥
अथवा कोई कैसा ही भय, या लालच देने आवे।
तो भी न्याय-मार्ग से मेरा, कभी न पद डिगने पावे॥7॥

होकर सुख में मग्न न फूलै, दुख में कभी न घबरावे।
पर्वत नदी श्मशान-भयानक, अटवी से नहीं भय खावे॥
रहे अडोल-अकम्प निरन्तर, यह मन दृढ़तर बन जावे।
इष्ट वियोग अनिष्ट योग में, सहनशीलता दिखलावे॥8॥

सुखी रहें सब जीव जगत के, कोई कभी न घबरावे।
वैर-पाप अभिमान छोड़ जग, नित्य नये मंगल गावे॥
घर-घर चर्चा रहे धर्म की, दुष्कृत-दुष्कर हो जावे।
ज्ञान-चरित उन्नत कर अपना, मनुज जन्म फल सब पावे॥9॥

ईति-भीति व्यापे नहीं जग में, वृष्टि समय पर हुआ करे।
धर्म-निष्ठ होकर राजा भी, न्याय प्रजा का किया करे।
रोग-मरी-दुर्भिक्ष न फैले, प्रजा शांति से जिया करे।
परम अहिंसा धर्म जगत में, फैल सर्वहित किया करे।॥10॥

फैले प्रेम परस्पर जग में, मोह दूर ही रहा करे।
अप्रिय-कटुक-कठोर शब्द नहीं, कोई मुख से कहा करे॥
बनकर सब 'युग-वीर' हृदय से, देशोन्नति रत रहा करे।
वस्तु-स्वरूप विचार खुशी से, सब दुख संकट सहा करे॥11॥

## भक्तामर-स्तोत्र

भक्तामर - प्रणत - मौलि - मणि - प्रभाणा -
मुद्योतकं दलित - पाप - तमो - वितानम्।
सम्यक् प्रणम्य जिन-पाद युगं युगादा-
वालम्बनं भव-जले पततां जनानाम् ॥1॥

यः संस्तुतः सकल - वाङ्मय - तत्त्व - बोधा -
दुद्भूत - बुद्धि - पटुभिः सुर - लोक - नाथैः।
स्तोत्रै - र्जगत्त्रितय - चित्त - हरै रुदारैः
स्तोष्ये किलाहमपि तं प्रथमं जिनेन्द्रम् ॥2॥

बुद्ध्या विनाऽपि विबुधार्चित-पाद-पीठ!
स्तोतुं समुद्यत - मतिर्विगत - त्रपोऽहं।
बालं विहाय जल - संस्थितमिन्दुबिम्ब-
मन्यः क इच्छति जनः सहसा ग्रहीतुम् ॥3॥

वक्तुं गुणान् गुणसमुद्र! शशाङ्क-कान्तान्
कस्ते क्षमः सुर-गुरु प्रतिमोऽपि बुद्धया।
कल्पान्त-काल-पवनोद्धत-नक्र चक्रं
को वा तरीतुमलमम्बुनिधिं भुजाभ्याम् ॥4॥

सोऽहं तथाऽपि तव भक्ति-वशान्मुनीश!
कर्तुं स्तवं विगत-शक्तिरपि प्रवृत्तः।
प्रीत्यात्म-वीर्यमविचार्य मृगी मृगेन्द्रं
नाभ्येति किं निजशिशोः परिपालनार्थम् ॥5॥

अल्पश्रुतं श्रुतवतां परिहासधाम,
त्वद्भक्तिरेव मुखरीकुरुते बलान्माम्।
यत्कोकिलः किल मधौ मधुरं विरौति
तच्चाम्र-चारु-कलिका-निकरैकहेतु ॥6॥

त्वत्संस्तवेन भव-सन्तति-सन्निबद्धं
पापं क्षणात्क्षयमुपैति शरीर-भाजाम्।
आक्रान्त - लोकमलि - नीलमशेषमाशु,
सूर्यांशु भिन्नमिव शार्वर-मन्धकारम् ॥7॥

मत्वेति नाथ! तव संस्तवनं मयेद-
मारभ्यते तनु-धियाऽपि तव प्रभावात्।
चेतो हरिष्यति सतां नलिनीदलेषु,
मुक्ताफलद्युतिमुपैति ननूद-बिन्दुः ॥8॥

आस्तां तव स्तवनमस्त-समस्त-दोषं
त्वत्सङ्कथाऽपि जगतां दुरितानि हन्ति।
दूरे सहस्रकिरणः कुरुते प्रभैव,
पद्माकरेषु जलजानि विकासभाञ्जि ॥9॥

नात्यद्‌भुतं भुवन-भूषण! भूतनाथ!
भूतैर्गुणैर्भुवि भवन्तमभिष्टुवन्तः।
तुल्या भवन्ति भवतो ननु तेन किं वा,
भूत्याश्रितं य इह नात्मसमं करोति ॥10॥

दृष्ट्‌वा भवन्तमनिमेष विलोकनीयं,
नान्यत्र तोषमुपयाति जनस्य चक्षुः।
पीत्वा पयः शशिकरद्युति-दुग्धसिन्धोः
क्षारं जलं जलनिधे-रसितुं क इच्छेत् ॥11॥

यैः शान्त-राग-रुचिभिः परमाणुभिस्त्वं,
निर्मापित - स्त्रिभुवनैक - ललामभूत!
तावन्त एव खलु तेऽप्यणवः पृथिव्यां,
यत्ते समानमपरं न हि रूपमस्ति ॥12॥

वक्त्रं क्व ते सुरनरोरग नेत्रहारि
निःशेष - निर्जित - जगत्त्रितयोपमानम्।
बिम्बं कलङ्कमलिनं क्व निशाकरस्य,
यद्वासरे भवति पाण्डु-पलाशकल्पम् ॥13॥

सम्पूर्ण - मण्डल - शशाङ्क - कला - कलाप,
शुभ्रा गुणास्त्रिभुवनं तव लङ्घयन्ति।
ये संश्रितास्त्रिजगदीश्वरनाथमेकं,
कस्तान्निवारयति सञ्चरतो यथेष्टम् ॥14॥

चित्रं किमत्र यदि ते त्रिदशाङ्गनाभि-
र्नीतं मनागपि मनो न विकारमार्गम्।
कल्पान्त-काल-मरुता चलिताचलेन,
किं मन्दराद्रि-शिखरं चलितं कदाचित् ॥15॥

निर्धूम - वर्तिरपवर्जित - तैलपूरः,
कृत्स्नं जगत्त्रयमिदं प्रकटीकरोषि।
गम्यो न जातु मरुतां चलिताचलानां,
दीपोऽपरस्त्वमसि नाथ! जगत्प्रकाशः ॥16॥

नास्तं कदाचिदुपयासि न राहुगम्यः,
स्पष्टीकरोषि सहसा युगपज्जगन्ति।
नाम्भोधरोदर - निरुद्ध - महाप्रभावः,
सूर्यातिशायि - महिमासि मुनीन्द्र! लोके ॥17॥

नित्योदयं दलित - मोह - महान्धकारं,
गम्यं न राहु-वदनस्य न वारिदानाम्।
विभ्राजते तव मुखाब्जमनल्पकान्ति,
विद्योतयज्जगदपूर्व - शशाङ्क - बिम्बम् ॥18॥

किं शर्वरीषु शशिनाह्नि विवस्वता वा
युष्मन्मुखेन्दु-दलितेषु तमस्सु नाथ!
निष्पन्न-शालि-वनशालिनि जीव-लोके,
कार्यं कियज्जलधरैर्जल-भार-नम्रैः ॥19॥

ज्ञानं यथा त्वयि विभाति कृतावकाशं,
नैवं तथा हरिहरादिषु नायकेषु।
तेजः स्फुरन्मणिषु याति यथा महत्त्वं,
नैवं तु काचशकले किरणाकुलेऽपि ॥20॥

मन्ये वरं हरिहरादय एव दृष्टा,
दृष्टेषु येषु हृदयं त्वयि तोषमेति।
किं वीक्षितेन भवता भुवि येन नान्यः,
कश्चिन्मनो हरति नाथ! भवान्तरेऽपि ॥21॥

स्त्रीणां शतानि शतशो जनयन्ति पुत्रान्,
नान्या सुतं त्वदुपमं जननी प्रसूता।
सर्वा दिशो दधति भानि सहस्र-रश्मिं,
प्राच्येव दिग्जनयति स्फुरदंशुजालम् ॥22॥

त्वामामनन्ति मुनयः परमं पुमांस
मादित्य-वर्णममलं तमसः पुरस्तात्।
त्वामेव सम्यगुपलभ्य जयन्ति मृत्युं,
नान्यः शिवः शिवपदस्य मुनीन्द्र! पन्थाः ॥23॥

त्वामव्ययं विभुमचिन्त्य-मसंख्यमाद्यं,
ब्रह्माण-मीश्वरमनन्त-मनङ्गकेतुम्।
योगीश्वरं विदित-योग-मनेकमेकं,
ज्ञान स्वरूपममलं प्रवदन्ति सन्तः ॥24॥

बुद्धस्त्वमेव विबुधार्चित-बुद्धि-बोधात्,
त्वं शङ्करोऽसि भुवन-त्रय-शङ्करत्वात्।
धातासि धीर शिव-मार्गविधेर्विधानात्
व्यक्तं त्वमेव भगवन्! पुरुषोत्तमोऽसि॥25॥

तुभ्यं नमस्त्रिभुवनार्ति हराय नाथ!
तुभ्यं नमः क्षिति-तलामल-भूषणाय।
तुभ्यं नमस्त्रिजगतः परमेश्वराय,
तुभ्यं नमो जिन-भवोदधि शोषणाय ॥26॥

को विस्मयोऽत्र यदि नाम गुणैरशेषै-
स्त्वं संश्रितो निरवकाशतया मुनीश!
दौषैरुपात्तविविधाश्रय - जात - गर्वैः,
स्वप्नान्तरेऽपि न कदाचिदपीक्षितोऽसि ॥27॥

उच्चैरशोक-तरु-संश्रित-मुन्मयूख-
माभाति रूपममलं भवतो नितान्तम्
स्पष्टोल्लसत् किरण मस्त-तमो-वितानं,
बिम्बं रवेरिव पयोधर-पार्श्ववर्ति ॥28॥

सिंहासने मणि-मयूख-शिखा-विचित्रे,
विभ्राजते तव वपुः कनकावदातम्।
बिम्बं वियद्विलसदंशुलता - वितानं,
तुङ्गोदयाद्रि शिरसीव सहस्र-रश्मेः ॥29॥

कुन्दावदात - चलचामर - चारु - शोभं,
विभ्राजते तव वपुः कलधौत-कान्तम्।
उद्यच्छशाङ्क - शुचि - निर्झर - वारि - धार-
मुच्चैस्तटं सुरगिरेरिव शात-कौम्भम् ॥30॥

छत्र-त्रयं तव विभाति शशाङ्क-कान्त-
मुच्चैः स्थितं स्थगित-भानुकर प्रतापम्।
मुक्ता-फल-प्रकर-जाल विवृद्ध-शोभं,
प्रख्यापयत् त्रिजगतः परमेश्वरत्वम् ॥31॥

गम्भीर - तार - रव - पूरित - दिग्विभाग-
स्त्रैलोक्य - लोकशुभ - सङ्गम - भूति-दक्षः।
सद्धर्मराज - जयघोषण - घोषकः सन्,
खे दुन्दुभिर्ध्वनति ते यशसः प्रवादी ॥32॥

मन्दार - सुन्दर - नमेरु - सुपारिजात -
सन्तानकादि - कुसुमोत्कर - वृष्टिरुद्धा।
गन्धोद - बिन्दु - शुभ - मन्द - मरुत्प्रपाता,
दिव्या दिवः पतति ते वचसां ततिर्वा ॥33॥

शुम्भत्प्रभा - वलय - भूरि - विभा विभोस्ते,
लोकत्रये द्युतिमतां द्युतिमाक्षिपन्ती।
प्रोद्यद्दिवाकर - निरन्तर - भूरि - संख्या,
दीप्त्या जयत्यपि निशामपि सोम-सौम्याम् ॥34॥

स्वर्गापवर्ग - गम - मार्ग - विमार्गणेष्टः,
सद्धर्म-तत्त्व-कथनैक-पटुस्त्रिलोक्याः
दिव्यध्वनि-र्भवति ते विशदार्थ-सर्व-
भाषा स्वभाव-परिणाम-गुणैः प्रयोज्यः ॥35॥

उन्निद्र - हेम - नव पङ्कज - पुञ्ज - कान्ति,
पर्युल्लसन्नख - मयूख - शिखाभिरामौ।
पादौ पदानि तव यत्र जिनेन्द्र! धत्तः
पद्मानि तत्र विबुधाः परिकल्पयन्ति ॥36॥

इत्थं यथा तव विभूतिरभूज्जिनेन्द्र!
धर्मोपदेशन - विधौ न तथा परस्य।
यादृक्प्रभा दिनकृतः प्रहतान्धकारा,
तादृक्कुतो ग्रह-गणस्य विकाशिनोऽपि ॥37॥

श्च्योतन्मदाविल - विलोल - कपोल - मूल
मत्तभ्रमद् - भ्रमर नादविवृद्ध - कोपम्।
ऐरावताभमिभ - मुद्धत - मापतन्तं
दृष्ट्वा भयं भवति नो भवदाश्रितानाम् ॥38॥

भिन्नेभ - कुम्भ - गलदुज्ज्वल - शोणिताक्त
मुक्ता - फल - प्रकर - भूषित - भूमिभागः।
बद्धक्रमः क्रमगतं हरिणाधिपोऽपि,
नाक्रामति क्रम - युगाचल - संश्रितं ते ॥39॥

कल्पान्त - काल - पवनोद्धत - वह्निकल्पं,
दावानलं ज्वलित - मुज्ज्वल - मुत्स्फुलिङ्गम् ।
विश्वं जिघत्सुमिव सम्मुख मापतन्तं,
त्वन्नाम - कीर्तन - जलं शमयत्यशेषम् ॥40॥

रक्तेक्षणं समद - कोकिल - कण्ठ - नीलं,
क्रोधोद्धतं फणिन मुत्फण मापतन्तम् ।
आक्रामति क्रमयुगेन निरस्त-शङ्क-
स्त्वन्नाम - नाग - दमनी हृदि यस्य पुंसः ॥41॥

वल्गत्तुरङ्ग - गज - गर्जित - भीमनाद-
माजौ बलं बलवतामपि भूपतीनां ।
उद्यद्दिवाकर - मयूख - शिखा - पविद्धं,
त्वत्कीर्तनात्तम इवाशु भिदामुपैति ॥42॥

कुन्ताग्र - भिन्न - गज - शोणित - वारिवाह-
वेगावतार - तरणातुर योध - भीमे ।
युद्धे जयं विजित - दुर्जय - जेय - पक्षा-
स्त्वत्पाद - पङ्कज - वनाश्रयिणो लभन्ते ॥43॥

अम्भोनिधौ क्षुभित-भीषण-नक्र चक्र-
पाठीन पीठ-भय-दोल्वण-वाड्वाग्नौ ।
रङ्गत्तरङ्ग - शिखर स्थित यान पात्रा-
स्त्रासं विहाय भवतः स्मरणाद् व्रजन्ति ॥44॥

उद्भूत-भीषण-जलोदर-भार भुग्नाः,
शोच्यां दशामुपगताश्च्युत-जीविताशाः।
त्वत्पाद - पङ्कज - रजोऽमृत दिग्ध-देहा,
मर्त्या भवन्ति मकरध्वज तुल्यरूपाः ॥45॥

आपाद - कण्ठ - मुरुशृंङ्खल - वेष्टिताङ्गाः,
गाढ़ं बृहन्निगड - कोटि - निघृष्ट - जङ्घाः
त्वन्नाम मन्त्रमनिशं मनुजाः स्मरन्तः,
सद्यः स्वयं विगत-बन्ध भया भवन्ति ॥46॥

मत्तद्विपेन्द्र - मृगराज - दवानलाहि -
संग्राम - वारिधि - महोदर बन्धनोत्थम्।
तस्याशु नाशमुपयाति भयं भियेव,
यस्तावकं स्तवमिमं मतिमानधीते ॥47॥

स्तोत्रस्रजं तव जिनेन्द्र गुणैर्निबद्धां,
भक्त्या मया रुचिर-वर्ण-विचित्र-पुष्पाम्।
धत्ते जनो य इह कण्ठ-गतामजस्रम्,
तं 'मानतुङ्ग'-मवशा समुपैति लक्ष्मीः ॥48॥

●

# महावीराष्टक-स्तोत्रम्

यदीये चैतन्ये मुकुर इव भावाश्चिदचितः,
समं भान्तिध्रौव्य-व्यय-जनि-लसन्तोऽन्त-रहिताः।
जगत्-साक्षी-मार्ग-प्रकटन-परो भानुरिव यो,
महावीर स्वामी नयनपथ-गामी भवतु मे॥

अताम्रं यच्चक्षुः कमल-युगलं-स्पन्द-रहितम्,
जनान् कोपापायं प्रकटयति वाभ्यन्तरमपि।
स्फुटं मूर्ति-र्यस्य प्रशमितमयी वातिविमला,
महावीर स्वामी नयनपथ-गामी भवतु मे॥

नमन् नाकेन्द्राली-मुकुट-मणि-भा-जाल-जटिलम्
लसत् पादाम्भोज-द्वयमिह यदीयं तनुभृताम्।
भवज्ज्वाला-शान्त्यै प्रभवति जलं वा स्मृतमपि,
महावीर स्वामी नयनपथ-गामी भवतु मे॥

यदर्चा-भावेन प्रमुदित-मना दर्दुर इह,
क्षणादासीत् स्वर्गी गुण-गणसमृद्धः सुखनिधिः।
लभन्ते सद्भक्ताः शिव-सुख-समाजं किमु तदा,
महावीर स्वामी नयनपथ-गामी भवतु मे॥

कनत् स्वर्णाभासोऽप्यपगत-तनु र्ज्ञान-निवहो,
विचित्रात्माप्येकोनृपति-वर-सिद्धार्थ- तनयः।
अजन्मापि श्रीमान् विगत-भव-रागोऽद्भुत-गतिः,
महावीर स्वामी नयनपथ-गामी भवतु मे॥

यदीया वाग्गङ्गा विविध-नय-कल्लोल-विमला,
बृहज्ज्ञानाम्भोभि-र्जगति जनतां या स्नपयति।
इदानी-मप्येषा बुध-जन-मरालैः परिचिता,
महावीर स्वामी नयनपथ-गामी भवतु मे॥

अनिर्वारोद्रेक-स्त्रिभुवन-जयी काम-सुभटः,
कुमारावस्थायामपि निज-बलाद्येन विजितः।
स्फुरन् नित्यानन्द-प्रशम-पद-राज्याय स जिनः,
महावीर स्वामी नयनपथ-गामी भवतु मे॥

महा-मोहातङ्क-प्रशमन-पराकस्मिक-भिषग्,
निरापेक्षो बन्धु-र्विदित-महिमा मङ्गल-करः।
शरण्यः साधूनां भव-भय-भृता-मुत्तम-गुणो,
महावीर स्वामी नयनपथ-गामी भवतु मे॥

महावीराष्टकं स्तोत्रं, भक्त्या 'भागेन्दुना' कृतम्।
यः पठेच्छृणुयाच्चापि, स याति परमां गतिम्॥

●

# एकीभावस्तोत्रम्

एकीभावं गत इव मया यः स्वयं कर्म-बन्धो
घोरं दुःखं भव-भव-गतो दुर्निवारः करोति।
तस्याप्यस्य त्वयि जिन-रवे भक्तिरुन्मुक्तये चेत्
जेतुं शक्यो भवति न तया कोऽपरस्तापहेतुः ॥1॥

ज्योतीरूपं दुरित निवह-ध्वान्त-विध्वंस-हेतुं
त्वामेवाहुर्जिनवर! चिरं तत्त्व-विद्याभियुक्ताः।
चेतोवासे भवसि च मम स्फार-मुद्भासमान-
स्तस्मिन्नंहः कथमिव तमो वस्तुतो वस्तुमीष्टे ॥2॥

आनन्दाश्रु-स्नपित-वदनं गद्गदं चाभिजल्पन्
यश्चायेत त्वयि दृढ़-मनाः स्तोत्र मन्त्रैर्भवन्तम्।
तस्याभ्यस्तादपि च सुचिरं देह-वल्मीक-मध्यान्
निष्कास्यन्ते विविध-विषम-व्याधयः काद्रवेयाः ॥3॥

प्रागेवेह त्रिदिव-भवनादेष्यता-भव्य-पुण्यात्
पृथ्वी-चक्रं कनकमयतां देव! निन्ये त्वयेदम्।
ध्यान-द्वारं मम रुचिकरं स्वान्त-गेहं प्रविष्ट-
स्तत्किं चित्रं जिन! वपुरिदं यत्सुवर्णीकरोषि ॥4॥

लोकस्यैकस्त्वमसि भगवन्! निर्निमित्तेन बन्धु-
स्त्वय्येवासौ सकल-विषया शक्ति-रप्रत्यनीका।
भक्तिस्फीतां चिरमधिवसन्मामिकां चित्त-शय्यां
मय्युत्पन्नं कथमिव ततः क्लेश-यूथं सहेथाः ॥5॥

जन्माटव्यां कथमपि मया देव! दीर्घं भ्रमित्वा
प्राप्तैवेयं तव नय-कथा स्फार-पीयूष-वापी।
तस्या मध्ये हिमकर-हिम-व्यूह-शीते नितान्तं
निर्मग्नं मां न जहति कथं दुःख दावोपतापाः ॥6॥

पाद-न्यासादपि च पुनतो यात्रया ते त्रिलोकीं
हेमाभासो भवति सुरभिः श्रीनिवासश्च पद्मः।
सर्वांगेण स्पृशति भगवंस्त्वय्यशेषं मनो मे
श्रेयः किं तत्स्वयमहरहर्यन्न मामभ्युपैति ॥7॥

पश्यन्तं त्वद्वचनममृतं भक्ति-पात्र्या पिबन्तं
कर्मारण्यात् पुरुष-मसमानन्द-धाम प्रविष्टम्।
त्वां दुर्वार-स्मर-मद-हरं त्वत्प्रसादैक-भूमिं
क्रूराकाराः कथमिव रुजा कण्टका निर्लुठन्ति ॥8॥

पाषाणात्मा तदितरसमः केवलं रत्न-मूर्ति-
र्मानस्तम्भो भवति च परस्तादृशो रत्न-वर्गः।
दृष्टि-प्राप्तो हरति स कथं मान-रोगं नराणां
प्रत्यासत्तिर्यदि न भवतस्तस्य तच्छक्ति-हेतुः ॥9॥

ह्यः प्राप्तो मरुदपि भवन् मूर्ति-शैलोपवाही
सद्यः पुंसां निरवधि-रुजा-धूलिबन्धं धुनोति।
ध्यानाहूतो हृदय-कमलं यस्य तु त्वं प्रविष्ट-
स्तस्याशक्यः क इह भुवने देव! लोकोपकारः ॥10॥

जानासि त्वं मम भव-भवे यच्च यादृक्च दुःखं
जातं यस्य स्मरणमपि मे शस्त्रवन्निष्पिनष्टि।
त्वं सर्वेशः सकृप इति च त्वामुपेतोऽस्मि भक्त्या
यत्कर्तव्यं तदिह विषये देव! एव प्रमाणम् ॥11॥

प्रापद्दैवं तव नुति-पदैर्जीवकेनोपदिष्टैः
पापाचारी मरण-समये सारमेयोऽपि सौख्यम्।
कः सन्देहो यदुपलभते वासव-श्री प्रभुत्वं
जल्पञ्जाप्यैर्मणिभिरमलैस्त्वन्नमस्कार-चक्रम् ॥12॥

शुद्धे ज्ञाने शुचिनि चरिते सत्यपि त्वय्यनीचा
भक्तिर्नो चेदनवधि-सुखावञ्चिका कुञ्चिकेयम्।
शक्योद्घाटं भवति हि कथं मुक्ति-कामस्य पुंसो
मुक्ति-द्वारं परिदृढ़-महामोह-मुद्रा-कवाटम् ॥13॥

प्रच्छन्नः खल्वय-मघ-मयै-रन्धकारैः समन्तात्
पन्था मुक्तेः स्थपुटित-पदः क्लेश-गर्तैरगाधैः।
तत्कस्तेन व्रजति सुखतो देव! तत्त्वावभासी
यद्यग्रेऽग्रे न भवति भवद्भारती-रत्न-दीपः ॥14॥

आत्म-ज्योति-र्निधि-रनवधि-र्दृष्टु-रानन्द-हेतुः
कर्म-क्षोणी-पटल-पिहितो योऽनवाप्यः परेषाम्।
हस्ते कुर्वन्त्यनतिचिरतस्तं भवद्भक्तिभाजः
स्तोत्रै-र्बंध-प्रकृति-परुषोद्दाम-धात्री-खनित्रैः ॥15॥

प्रत्युत्पन्ना नय-हिमगिरेरायता चामृताब्धेः
या देव! त्वत्पद-कमलयोः संगता भक्ति-गङ्गा।
चेतस्तस्यां मम रुचि-वशादाप्लुतं क्षालितांहः
कल्माषं यद्भवति किमियं देव! सन्देह-भूमिः ॥16॥

प्रादुर्भूत-स्थिर-पद-सुख! त्वामनुध्यायतो मे
त्वय्येवाहं स इति मतिरुत्पद्यते निर्विकल्पा।
मिथ्यैवेयं तदपि तनुते तृप्ति-मभ्रेष-रूपाम्
दोषात्मानोऽप्यभिमत-फलास्त्वत्प्रसादाद् भवन्ति ॥17॥

मिथ्यावादं मल-मपनुदन् सप्तभंङ्गी-तरङ्गैः;
र्वागम्भोधिर्भुवनमखिलं देव! पर्येति यस्ते।
तस्यावृतिं सपदि विबुधाश्चेतसैवाचलेन
व्यातन्वन्तः सुचिर-ममृता-सेवया तृप्नुवन्ति ॥18॥

आहार्येभ्यः स्पृहयति परं यः स्वभावादहृद्यः
शस्त्र-ग्राही भवति सततं वैरिणा यश्च शक्यः।
सर्वाङ्गेषु त्वमसि सुभगस्त्वं न शक्यः परेषां
तत्किं भूषा-वसन-कुसुमैः किं च शस्त्रैरुदस्त्रैः ॥19॥

इन्द्रः सेवां तव सुकुरुतां किं तया श्लाघनं ते
तस्यैवेयं भव-लय-करीं श्लाघ्यतामातनोति।
त्वं निस्तारी जनन-जलधेः सिद्धि-कान्ता-पतिस्त्वं
त्वं लोकानां प्रभुरिति तव श्लाघ्यते स्तोत्रमित्थम् ॥20॥

वृति-र्वाचा-मपर-सदृशी न त्वमन्येन तुल्यः
स्तुत्युद्गाराः कथमिव ततस्त्वय्यमी नः क्रमन्ते।
मैवं भूवंस्तदपि भगवन्! भक्ति पीयूष पुष्टा-
स्ते भव्यानामभिमत-फलाः पारिजाता भवन्ति ॥21॥

कोपावेशो न तव न तव क्वापि देव! प्रसादो
व्याप्तं चेतस्तव हि परमोपेक्षयैवानपेक्षम्।
आज्ञावश्यं तदपि भुवनं सन्निधि-र्वैर-हारी
क्वैवंभूतं भुवन-तिलक! प्राभवं त्वत्परेषु ॥22॥

देव! स्तोतुं त्रिदिव गणिका-मण्डली-गीत-कीर्तिं
तोतूर्ति त्वां सकल-विषय-ज्ञान-मूर्तिं जनो यः।
तस्य क्षेमं न पदमटतो जातु जोहूर्ति पन्था-
स्तत्त्वग्रन्थ-स्मरण-विषये नैष मोमूर्ति मर्त्यः ॥23॥

चित्ते कुर्वन् निरवधि-सुख-ज्ञान-दृग्वीर्य-रूपं
देव! त्वां यः समय-नियमादादरेण स्तवीति।
श्रेयोमार्गं स खलु सुकृती तावता पूरयित्वा
कल्याणानां भवति विषयः पञ्चधा पञ्चितानाम् ॥24॥

भक्ति-प्रह्व-महेन्द्र-पूजित-पद! त्वत्कीर्तने न क्षमाः
सूक्ष्म-ज्ञान-दृशोऽपि संयमभृतः के हन्त मन्दा वयम्।
अस्माभिः स्तवन-च्छलेन तु परस्त्वय्यादरस्तन्यते
स्वात्माधीन-सुखैषिणां स खलु नः कल्याण-कल्पद्रुमः ॥25॥

स्वागता छन्द

वादिराजमनु शाब्दिक-लोको, वादिराजमनु तार्किक-सिंहः।
वादिराजमनु काव्यकृतस्ते, वादिराजमनु भव्य-सहायः ॥

●

# श्रीवीतरागस्तोत्रम्

शिवं शुद्धबुद्धं परं विश्वनाथं, न देवो न बंधुर्न कर्मा न कर्ता।
न अङ्गं न सङ्गं न स्वेच्छा न कायं, चिदानन्दरूपं नमो वीतरागम् ॥1॥
न बन्धो न मोक्षो न रागादिदोषो, न योगं न भोगं न व्याधिर्न शोकः।
न कोपं न मानं न माया न लोभं, चिदानन्दरूपं नमो वीतरागम् ॥2॥
न हस्तौ न पादौ न घ्राणं न जिह्वा, न चक्षुर्न कर्णं न वक्त्रं न निद्रा।
न स्वामी न भृत्यो न देवो न मर्त्यः, चिदानन्दरूपं नमो वीतरागम् ॥3॥
न जन्मं न मृत्युः न मोहं न चिंता, न क्षुद्रो न भीतो न कार्श्यं न तन्द्रा।
न स्वेदं न खेदं न वर्णं न मुद्रा, चिदानन्दरूपं नमो वीतरागम् ॥4॥
त्रिदण्डे त्रिखण्डे हरे विश्वनाथं, हृषी केशविध्वस्त-कर्मादिजालम्।
न पुण्यं न पापं न चाक्षादि गात्रं, चिदानन्दरूपं नमो वीतरागम् ॥5॥
न बालो न वृद्धो न तुच्छो न मूढो, न स्वेदं न भेदं न मूर्तिर्न स्नेहः।
न कृष्णं न शुक्लं न मोहं न तन्द्रा, चिदानन्दरूपं नमो वीतरागम् ॥6॥
न आद्यं न मध्यं न अन्तं न चान्यत्, न द्रव्यं न क्षेत्रं न कालो न भावः।
न शिष्यो गुरुर्नापि हीनं न दीनं, चिदानन्दरूपं नमो वीतरागम् ॥7॥
इदं ज्ञानरूपं स्वयं तत्त्ववेदी, न पूर्णं न शून्यं न चैत्यं-स्वरूपम्।
न चान्यो न भिन्नं न परमार्थमेकं, चिदानन्दरूपं नमो वीतरागम् ॥8॥

आत्माराम-गुणाकरं गुणनिधिं, चैतन्यरत्नाकरं,
सर्वे भूतगतागते सुखदुःखे, ज्ञाते त्वयि सर्वगे।
त्रैलोक्याधिपते स्वयं स्वमनसा, ध्यायंति योगीश्वराः,
वंदे तं हरिवंशहर्ष-हृदयं, श्रीमान् हृदाभ्युद्यताम् ॥9॥

# परमानन्द स्तोत्र

परमानन्द संयुक्तं, निर्विकारं निरामयम्।
ध्यानहीना न पश्यन्ति, निजदेहे व्यवस्थितम्॥1॥

अनन्तसुखसम्पन्नं, ज्ञानामृतपयोधरम्।
अनन्तवीर्यसम्पन्नं, दर्शनं परमात्मनः॥2॥

निर्विकारं निराबाधं, सर्वसङ्गविवर्जितम्।
परमानन्दसम्पन्नं, शुद्धचैतन्यलक्षणम्॥3॥

उत्तमा स्वात्मचिंता स्यान्मोहचिंता च मध्यमा।
अधमा कामचिंता स्यात्, परचिंताऽधमाधमा॥4॥

निर्विकल्प समुत्पन्नं, ज्ञानमेव सुधारसम्।
विवेकमञ्जुलिं कृत्वा, तत्पिबन्ति तपस्विनः॥5॥

सदानन्दमयं जीवं, यो जानाति स पण्डितः।
स सेवते निजात्मानं, परमानन्दकारणम्॥6॥

नलिन्यां च यथा नीरं, भिन्नं तिष्ठति सर्वदा।
अयमात्मा स्वभावेन, देहे तिष्ठति निर्मलः॥7॥

द्रव्यकर्ममलैर्मुक्तं भावकर्मविवर्जितम्।
नोकर्मरहितं सिद्धं निश्चयेन चिदात्मनः॥8॥

आनन्दं ब्रह्मणोरूपं, निज देहे व्यवस्थितम् ।
ध्यानहीना न पश्यन्ति, जात्यन्धा इव भास्करम् ॥9॥

तद्धयानं क्रियते भव्यैर्मनो येन विलीयते ।
तत्क्षणं दृश्यते शुद्धं, चिच्चमत्कारलक्षणम् ॥10॥

ये ध्यानशीला मुनयःप्रधानास्ते दुखहीना नियमाद्भवन्ति ।
सम्प्राप्य शीघ्रं परमात्मतत्त्वम्, व्रजन्ति मोक्षं क्षणमेकमेव ॥11॥

आनन्दरूपं परमात्मतत्त्वं, समस्तसंकल्पविकल्पमुक्तं ।
स्वभावलीना निवसन्ति नित्यं, जानाति योगी स्वयमेवतत्त्वम् ॥12॥

चिदानन्दमयं शुद्धं, निराकारं निरामयम् ।
अनन्तसुखसम्पन्नं सर्वसङ्गविवर्जितम् ॥13॥

लोकमात्रप्रमाणोऽयं, निश्चये न हि संशयः ।
व्यवहारे तनूमात्रः कथितः परमेश्वरैः ॥14॥

यत्क्षणं दृश्यते शुद्धं तत्क्षणं गतविभ्रमः ।
स्वस्थचित्तः स्थिरीभूत्वा, निर्विकल्पसमाधिना ॥15॥

स एव परमं ब्रह्म, स एव जिनपुङ्गवः ।
स एव परमं तत्त्वं, स एव परमो गुरुः ॥16॥

स एव परमं ज्योतिः, स एव परमं तपः ।
स एव परमं ध्यानं, स एव परमात्मनः ॥17॥

स एव सर्व कल्याणं, स एव सुखभाजनं।
स एव शुद्ध चिद्रूपं, स एव परमः शिवः ॥18॥

स एव परमानन्दः, स एव सुखदायकः।
स एव परमज्ञानं, स एव गुणसागरः ॥19॥

परमाल्हादसम्पन्नं, रागद्वेषविवर्जितम्।
सोऽहंतं देहमध्येषु यो जानाति स पण्डितः ॥20॥

आकाररहितं शुद्धं, स्वस्वरूपव्यवस्थितम्।
सिद्धमष्टगुणोपेतं, निर्विकारं निरञ्जनम् ॥21॥

तत्सदृर्शनं निजात्मानं, प्रकाशाय महीयसे।
सहजानन्दचैतन्यं, यो जानाति स पण्डितः ॥22॥

पाषाणेषु यथा हेम, दुग्धमध्ये यथा घृतम्।
तिलमध्ये यथा तैलं, देहमध्ये तथा शिवः ॥23॥

काष्ठमध्ये यथा वह्निः, शक्ति रूपेण तिष्ठति।
अयमात्मा शरीरेषु, यो जानाति स पण्डितः ॥24॥

## तत्त्वार्थसूत्र

मोक्षमार्गस्य नेतारं भेत्तारं कर्मभूभृताम् ।
ज्ञातारं विश्वतत्त्वानां वन्दे तद्गुणलब्धये॥
त्रैकाल्यं द्रव्य-षट्कं नव-पद-सहितं जीव-षट्काय-लेश्याः ।
पञ्चान्ये चास्तिकाया व्रत-समिति-गति-ज्ञान-चारित्र-भेदाः ॥
इत्येतन्मोक्षमूलं त्रिभुवन-महितैः प्रोक्तमर्हद्भिरीशैः ।
प्रत्येति श्रद्दधाति स्पृशति च मतिमान् यः स वै शुद्धदृष्टिः ॥

### प्रथम अध्याय

सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्राणि मोक्ष-मार्गः॥1॥ तत्त्वार्थ श्रद्धानं सम्यग्दर्शनम्॥2॥ तन्निसर्गादधिगमाद्वा॥3॥ जीवाजीवास्रव-बन्ध-संवर-निर्जरा-मोक्षास्तत्त्वम्॥4॥ नाम-स्थापना-द्रव्य-भावतस्तन्न्यासः॥5॥ प्रमाण-नयैरधिगमः॥6॥ निर्देश-स्वामित्व-साधनाधिकरण-स्थिति-विधानतः॥7॥ सत्संख्या-क्षेत्र-स्पर्शन-कालान्तर- भावाल्पबहुत्वैश्च॥8॥ मति-श्रुतावधि-मनःपर्यय-केवलानि-ज्ञानम्॥9॥ तत्प्रमाणे॥10॥ आद्ये परोक्षम्॥11॥ प्रत्यक्षमन्यत्॥12॥ मतिः स्मृतिः संज्ञा चिन्ताभिनिबोध इत्यनर्थान्तरम्॥13॥ तदिन्द्रियानिन्द्रिय- निमित्तम्॥14॥ अवग्रहेहावाय-धारणाः॥15॥ बहु-बहुविध- क्षिप्रानिःसृतानुक्तध्रुवाणां सेतराणाम्॥16॥ अर्थस्य॥17॥ व्यञ्जनस्यावग्रहः॥18॥ न चक्षुरनिन्द्रियाभ्याम् ॥19॥

श्रुतं मतिपूर्वं द्वयनेक-द्वादश-भेदम्॥20॥ भव-प्रत्ययोऽवधिर्देव-नारकाणाम्॥21॥ क्षयोपशम-निमित्तः षड्विकल्पःशेषाणाम्॥22॥ ऋजु-विपुलमती मनःपर्ययः॥23॥ विशुद्ध्यप्रतिपाताभ्यां तद्विशेषः॥24॥ विशुद्धि-क्षेत्र-स्वामि-विषयेभ्योऽवधिमनःपर्यययोः॥25॥ मति-श्रुतयोर्निबन्धो द्रव्येष्वसर्व- पर्यायेषु॥26॥ रूपिष्ववधेः॥27॥ तदनन्त-भागे मनःपर्ययस्य॥28॥ सर्व-द्रव्य-पर्यायेषु केवलस्य॥29॥ एकादीनि भाज्यानि युगपदेकस्मिन्नाचतुर्भ्यः ॥30॥ मति-श्रुतावधयो विपर्ययश्च॥31॥ सदसतोरविशेषाद्यदृच्छोपलब्धेरुन्मत्तवत् ॥32॥ नैगम-संग्रह-व्यवहारर्जु-सूत्र- शब्द-समभिरूढैवंभूता नयाः॥33॥

इति तत्त्वार्थसूत्रे मोक्षशास्त्रे प्रथमोऽध्यायः।

## द्वितीय अध्याय

औपशमिक-क्षायिकौ भावौ मिश्रश्च जीवस्य स्वतत्त्व-मौदयिक-पारिणामिकौ च ॥1॥ द्वि-नवाष्टादशैकविंशति-त्रिभेदा-यथाक्रमम्॥2॥ सम्यक्त्व-चारित्रे॥3॥ ज्ञान-दर्शन-दान-लाभ-भोगोपभोग-वीर्याणि च॥4॥ ज्ञानाज्ञानदर्शन-लब्धयश्चतुस्त्रित्रि-पञ्च-भेदाः सम्यक्त्व-चारित्र-संयमासंयमाश्च॥5॥ गति-कषाय-लिङ्ग-मिथ्यादर्शनाज्ञाना-संयतासिद्ध-लेश्याश्चतुश्चतुस्त्र्येकैकैकैक-षड्भेदाः॥6॥ जीव-भव्याभव्यत्वानि च॥7॥ उपयोगो लक्षणम्॥8॥ स द्विविधोऽष्ट-चतुर्भेदः ॥9॥ संसारिणो मुक्ताश्च॥10॥ समनस्कामनस्काः॥11॥ संसारिणस्त्रस-स्थावराः॥12॥ पृथिव्यप्तेजोवायु-वनस्पतयः स्थावराः॥13॥ द्वीन्द्रियादय-स्त्रसाः॥14॥ पञ्चेन्द्रियाणि॥15॥ द्विविधानि॥16॥ निर्वृत्त्युपकरणे द्रव्येन्द्रियम्॥17॥

लब्ध्युपयोगौ भावेन्द्रियम्॥18॥ स्पर्शन-रसन-घ्राण-चक्षुःश्रोत्राणि॥19॥ स्पर्श-रस-गन्ध-वर्ण-शब्दास्तदर्थाः॥20॥ श्रुतमनिन्द्रियस्य॥21॥ वनस्पत्यन्तानामेकम्॥22॥ कृमि-पिपीलिका-भ्रमर-मनुष्यादीनामेकैक-वृद्धानि॥23॥ संज्ञिनः समनस्काः॥24॥ विग्रह-गतौ कर्म-योगः॥25॥ अनुश्रेणि गतिः॥26॥ अविग्रहा जीवस्य॥27॥ विग्रहवती च संसारिणः प्राक् चतुर्भ्यः॥28॥ एकसमयाविग्रहा॥29॥ एकं द्वौ त्रीन्वानाहारकः॥30॥ सम्मूर्च्छन-गर्भोपपादा जन्म॥31॥ सचित्त-शीत-संवृताः सेतरा मिश्राश्चैकशस्तद्योनयः॥32॥ जरायुजाण्डज-पोतानां गर्भः॥33॥ देव-नारकाणामुपपादः॥34॥ शेषाणां सम्मूर्च्छनम्॥35॥ औदारिक-वैक्रियिकाहारक-तैजस-कार्मणानि शरीराणि॥36॥ परं परं सूक्ष्मम्॥37॥ प्रदेशतोऽसंख्येयगुणं प्राक् तैजसात्॥38॥ अनन्त-गुणे परे॥39॥ अप्रतीघाते॥40॥ अनादि-सम्बन्धे च॥41॥ सर्वस्य॥42॥ तदादीनि भाज्यानि युगपदेकस्मिन्नाचतुर्भ्यः॥43॥ निरुपभोगमन्त्यम् ॥44॥ गर्भसम्मूर्च्छनजमाद्यम् ॥45॥ औपपादिकं वैक्रियिकम्॥46॥ लब्धि-प्रत्ययं च॥47॥ तैजसमपि॥48॥ शुभं विशुद्धमव्याघाति चाहारकं प्रमत्तसंयतस्यैव॥49॥ नारक-सम्मूर्च्छिनो नपुंसकानि॥50॥ न देवाः॥51॥ शेषास्त्रिवेदाः॥52॥ औपपादिक-चरमोत्तम-देहाऽसंख्येय-वर्षायुषोऽनप-वर्त्यायुषः॥53॥

इति तत्त्वार्थसूत्रे मोक्षशास्त्रे द्वितीयोऽध्यायः।

## तृतीय अध्याय

रत्न-शर्करा-बालुका-पङ्क-धूम-तमो-महातमः-प्रभा-भूमयो घनाम्बुवाताकाश-प्रतिष्ठाः सप्ताधोऽधः ॥1॥ तासु त्रिंशत्-पञ्चविंशति- पञ्चदश-दश-त्रि-पञ्चोनैक-नरक-शतसहस्राणि पञ्च चैव यथाक्रमम्॥2॥ नारका नित्याशुभतर-लेश्या-परिणाम-देह-वेदना- विक्रियाः॥3॥ परस्परोदीरित-दुःखाः॥4॥ संक्लिष्टासुरोदीरित-दुःखाश्च प्राक् चतुर्थ्याः॥5॥ तेष्वेक-त्रि-सप्त-दश-सप्तदश-द्वाविंशति-त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमा सत्त्वानां परा स्थितिः॥6॥ जम्बूद्वीप-लवणोदादयः शुभनामानो द्वीप-समुद्राः॥7॥ द्विर्द्विर्विष्कम्भाः पूर्व-पूर्व-परिक्षेपिणो वलयाकृतयः॥8॥ तन्मध्ये मेरु-नाभिर्वृत्तो योजन-शतसहस्रविष्कम्भो जम्बूद्वीपः॥9॥ भरत-हैमवत-हरि-विदेह- रम्यक-हैरण्यवतैरावतवर्षाः क्षेत्राणि॥10॥ तद्विभाजिनः पूर्वापरायता हिमवन्-महाहिमवन्-निषध-नील-रुक्मि-शिखरिणो वर्षधर- पर्वताः॥11॥ हेमार्जुन-तपनीय-वैडूर्य-रजत-हेममयाः॥12॥ मणिविचित्र- पार्श्वाउपरिमूले च तुल्य-विस्ताराः॥13॥ पद्म-महापद्म-तिगिञ्छ- केशरि-महापुण्डरीक- पुण्डरीका ह्रदास्तेषामुपरि॥14॥ प्रथमो योजन- सहस्रायामस्तदर्द्ध विष्कम्भो ह्रदः॥15॥ दशयोजनावगाहः॥16॥ तन्मध्ये योजनं पुष्करम्॥17॥ तद् द्विगुण-द्विगुणा ह्रदाः पुष्कराणि च॥18॥ तन्निवासिन्यो देव्यः श्री-ह्री-धृति-कीर्ति-बुद्धि-लक्ष्म्यः पल्योपमस्थितयः ससामानिक-परिषत्काः॥19॥ गङ्गा-सिन्धु-रोहिद्रोहितास्या-हरिद्धरिकान्ता-सीता-सीतोदा- नारी-नरकान्ता-सुवर्ण-रूप्यकूला-रक्ता-रक्तोदाः सरित-स्तन्मध्यगाः॥20॥ द्वयोर्द्वयोः पूर्वाः पूर्वगाः॥21॥ शेषास्त्वपरगाः॥22॥

चतुर्दश-नदी- सहस्र-परिवृता गङ्गा-सिन्ध्वादयो नद्यः॥23॥ भरतः षड्विंशति- पञ्चयोजनशत-विस्तारः षट् चैकोनविंशति-भागा योजनस्य ॥24॥ तद्विगुण-द्विगुण- विस्तारा वर्षधर-वर्षा विदेहान्ताः॥25॥ उत्तरा दक्षिण-तुल्याः॥26॥ भरतैरावतयोर्वृद्धि-ह्रासौ षट्समयाभ्यामुत्सर्पिण्य- वसर्पिणीभ्याम्॥27॥ ताभ्यामपरा भूमयोऽवस्थिताः॥28॥ एक-द्वि-त्रि- पल्योपम-स्थितयो हैमवतक-हारिवर्षक-दैवकुरवकाः॥29॥ तथोत्तराः ॥30॥ विदेहेषु संख्येय-कालाः॥31॥ भरतस्य विष्कम्भो जम्बूद्वीपस्य नवति-शत- भागः॥32॥ द्विर्धातकीखण्डे॥33॥ पुष्करार्द्धे च॥34॥ प्राङ्मानुषोत्तरान्मनुष्याः॥35॥ आर्या म्लेच्छाश्च॥36॥ भरतैरावत-विदेहाः कर्मभूमयोऽन्यत्र देवकुरूत्तर-कुरुभ्यः॥37॥ नृस्थिती परावरे त्रिपल्योपमान्तर्मुहूर्ते॥38॥ तिर्यग्योनिजानां च॥38॥

इति तत्त्वार्थसूत्रे मोक्षशास्त्रे तृतीयोऽध्याय।

## चतुर्थ अध्याय

देवाश्चतुर्णिकायाः॥1॥ आदितस्त्रिषु पीतान्त-लेश्याः॥2॥ दशाष्ट-पञ्च- द्वादश-विकल्पाः कल्पोपपन्न-पर्यन्ताः॥3॥ इन्द्र-सामानिक-त्रायस्त्रिंश-पारिषदात्मरक्ष-लोकपालानीक-प्रकीर्णकाभियोग्य-किल्विषिकाश्चैकशः ॥4॥ त्रायस्त्रिंश-लोक-पाल-वर्ज्या व्यन्तर-ज्योतिष्काः॥5॥ पूर्वयोर्द्वीन्द्राः॥6॥ काय-प्रवीचारा आ ऐशानात्॥7॥ शेषाः स्पर्श-रूप-शब्द-मनः-प्रवीचाराः॥8॥ परेऽप्रवीचाराः॥9॥ भवन वासिनोऽसुरनाग-विद्युत्सुपर्णाग्नि-वातस्तनितोदधि-द्वीप- दिक्कुमाराः ॥10॥ व्यन्तराः किन्नर-किम्पुरुष-महोरग-गन्धर्व-यक्ष-राक्षस-भूत-

पिशाचाः॥11॥ ज्योतिष्काः सूर्याचन्द्रमसौ ग्रह-नक्षत्र- प्रकीर्णक-तारकाश्च॥12॥ मेरु- प्रदक्षिणा नित्य-गतयो नृ-लोके॥13॥ तत्कृतः काल-विभागः॥14॥ बहिरवस्थिताः॥15॥ वैमानिकाः॥16॥ कल्पोपपन्नाः कल्पातीताश्च॥17॥ उपर्युपरि॥18॥ सौधर्मैशान-सानत्कुमार-माहेन्द्र-ब्रह्म-ब्रह्मोत्तर-लान्तव- कापिष्ठ-शुक्र-महाशुक्र-शतार-सहस्रारेष्वानत-प्राणतयो- रारणाच्युतयोर्नवसु ग्रैवेयकेषु विजय- वैजयन्त-जयन्तापराजितेषु सर्वार्थसिद्धौ च॥19॥ स्थिति-प्रभाव-सुख-द्युति-लेश्या-विशुद्धीन्द्रियावधि-विषयतोऽधिकाः॥20॥ गतिशरीर- परिग्रहाभिमानतो हीनाः॥21॥ पीत-पद्म-शुक्ल-लेश्या द्वि- त्रि-शेषेषु॥22॥ प्राग्ग्रैवेयकेभ्यः कल्पाः॥23॥ ब्रह्म-लोकालया लौकान्तिकाः॥24॥ सारस्वतादित्य-वह्न्यरुण-गर्दतोय तुषि ताव्याबाधारिष्टाश्च॥25॥ विजयादिषु द्वि-चरमाः॥26॥ औपपादिक-मनुष्येभ्यः शेषास्तिर्यग्यो-नयः॥27॥ स्थितिरसुर-नाग-सुपर्ण-द्वीप-शेषाणां सागरोपम-त्रिपल्योप-मार्ध-हीन-मिताः॥28॥ सौधर्मैशानयोः सागरोपमेऽधिके ॥29॥ सानत्कुमार-माहेन्द्रयोः सप्त ॥30॥ त्रि-सप्त-नवैकादश-त्रयोदश- पञ्चदशभि-रधिकानि तु ॥31॥ आरणाच्युता दूर्ध्वमेकैकेन नवसु ग्रैवेयकेषु विजयादिषु सर्वार्थसिद्धौ च॥32॥ अपरा पल्योपममधिकम्॥33॥ परतःपरतः पूर्वा पूर्वानन्तरा ॥34॥ नारकाणां च द्वितीयादिषु॥35॥ दश-वर्ष-सहस्राणि प्रथमायाम्॥36॥ भवनेषु च॥37॥ व्यन्तराणां च॥38॥ परा पल्योपममधिकम्॥39॥ ज्योतिष्काणां च॥40॥ तदष्ट-भागोऽपरा॥41॥ लौकान्तिकानामष्टौ सागरोपमाणि सर्वेषाम्॥42॥

इति तत्त्वार्थसूत्रे मोक्षशास्त्रे चतुर्थोऽध्यायः।

## पञ्चम अध्याय

अजीव-काया धर्माधर्माकाश-पुद्गलाः॥1॥ द्रव्याणि॥2॥ जीवाश्च॥3॥ नित्यावस्थितान्यरूपाणि॥4॥ रूपिणः पुद्गलाः॥5॥ आ आकाशादेकद्रव्याणि॥6॥ निष्क्रियाणि च॥7॥ असंख्येयाः प्रदेशा धर्माधर्मैकजीवानाम्॥8॥ आकाशस्यानन्ताः॥9॥ संख्येयासंख्येयाश्च पुद्गलानाम्॥10॥ नाणोः॥11॥ लोकाकाशेऽवगाहः॥12॥ धर्माधर्मयोः कृत्स्ने॥13॥ एकप्रदेशादिषुभाज्यः पुद्गलानाम्॥14॥ असंख्येय-भागादिषु जीवानाम्॥15॥ प्रदेश-संहार-विसर्पाभ्यां प्रदीपवत्॥16॥ गति-स्थित्युपग्रहौ धर्माधर्मयोरुपकारः॥17॥ आकाशस्यावगाहः॥18॥ शरीर-वाङ्-मनःप्राणापानाः पुद्गलानाम्॥19॥ सुखदुःख-जीवित-मरणोप-ग्रहाश्च॥20॥ परस्परोपग्रहो जीवानाम्॥21॥ वर्तना-परिणाम-क्रिया-परत्वापरत्वे च कालस्य ॥22॥ स्पर्श-रस-गन्ध-वर्णवन्तः पुद्गलाः॥23॥ शब्द-बन्ध- सौक्ष्म्य-स्थौल्य-संस्थान-भेद- तमश्छायातपोद्योत-वन्तश्च॥24॥ अणवः स्कन्धाश्च॥25॥ भेद-संघातेभ्यः उत्पद्यन्ते॥26॥ भेदादणुः॥27॥ भेद-संघाताभ्यां चाक्षुषः॥28॥ सद्द्रव्य- लक्षणम्॥29॥ उत्पादव्ययध्रौव्य-युक्तं सत्॥30॥ तद्भावाव्ययं नित्यम्॥31॥ अर्पितानर्पितसिद्धेः॥32॥ स्निग्ध-रूक्षत्वाद् बन्धः॥33॥ न जघन्य-गुणानाम् ॥34॥ गुण-साम्ये सदृशानाम्॥35॥ द्वयधिकादि-गुणानां तु॥36॥ बन्धेऽधिकौ पारिणामिकौ च॥37॥ गुण-पर्ययवद् द्रव्यम्॥38॥ कालश्च॥39॥ सोऽनन्तसमयः॥40॥ द्रव्याश्रया निर्गुणा गुणाः॥41॥ तद्भावः परिणामः॥42॥

इति तत्त्वार्थसूत्रे मोक्षशास्त्रे पञ्चमोऽध्यायः ।

## षष्ठ अध्याय

काय-वाङ्मनःकर्मयोगः॥1॥ स आस्रवः॥2॥ शुभः पुण्यस्याशुभः पापस्य॥3॥ सकषायाकषाययोः साम्परायिकेर्यापथयोः॥4॥ इन्द्रिय-कषायाव्रत-क्रियाः पञ्च-चतुःपञ्च-पञ्चविंशतिसंख्याः पूर्वस्य भेदाः॥5॥ तीव्र-मन्द-ज्ञाताज्ञात-भावाधिकरण-वीर्य- विशेषेभ्यस्तद्विशेषः॥6॥ अधिकरणं जीवाजीवाः॥7॥ आद्यं सम्रम्भ-समारम्भारम्भ-योग-कृत-कारितानुमत-कषाय-विशेषैस्त्रिस्त्रिस्त्रिश्चतुश्चैकशः॥8॥ निर्वर्तना-निक्षेप-संयोग-निसर्गा द्वि-चतुर्द्वि-त्रि-भेदाः परम्॥9॥ तत्प्रदोष निह्नव-मात्सर्यान्तराया-सादनोपघाता ज्ञान-दर्शनावरणयोः॥10॥ दुःख-शोक-तापा-क्रन्दन-वध-परिदेवनान्यात्म-परोभय स्थानान्यसद्वेद्यस्य॥11॥ भूत-व्रत्यनुकम्पा-दानसरागसंयमादियोगः क्षान्तिः शौचमिति सद्वेद्यस्य॥12॥ केवलि-श्रुत-संघ-धर्म-देवावर्णवादो दर्शनमोहस्य॥13॥ कषायोदयात्तीव्र- परिणामश्चारित्रमोहस्य॥14॥ बह्वारम्भ-परिग्रहत्वं नारकस्यायुषः॥15॥ माया तैर्यग्योनस्य॥16॥ अल्पारम्भपरिग्रहत्वं मानुषस्य॥17॥ स्वभाव-मार्दवं च॥18॥ निःशीलव्रतत्वं च सर्वेषाम्॥19॥ सरागसंयम- संयमासंयमाकामनिर्जरा-बालतपांसि दैवस्य॥20॥ सम्यक्त्वं च॥21॥ योगवक्रता विसंवादनं चाशुभस्य नाम्नः॥22॥ तद्विपरीतं शुभस्य॥23॥ दर्शनविशुद्धिर्विनय-सम्पन्नता शीलव्रतेष्वनतीचारोऽभीक्ष्ण-ज्ञानोपयोग - संवेगौ शक्तितस्त्याग - तपसी साधु समाधिर्वैयावृत्त्यकरणमर्हदाचार्य - बहुश्रुत - प्रवचन - भक्तिरावश्यकापरिहाणि-मार्गप्रभावना प्रवचन-वत्सलत्वमिति तीर्थकरत्वस्य॥24॥ परात्म-निन्दा प्रशंसे सदसद्गुणोच्छादनोद्भावने च

नीचैर्गोत्रस्य॥25॥ तद्विपर्ययो नीचै वृत्त्यनुत्सेकौ चोत्तरस्य॥26॥ विघ्नकरणमन्तरायस्य॥27॥

इति तत्त्वार्थसूत्रे मोक्षशास्त्रे षष्ठोऽध्यायः।

## सप्तम अध्याय

हिंसानृत-स्तेयाब्रह्म-परिग्रहेभ्यो विरतिर्व्रतम्॥1॥ देश-सर्वतोऽणु-महती॥2॥ तत्स्थैर्यार्थं भावनाः पञ्च पञ्च॥3॥ वाङ्- मनोगुप्तीर्यादान-निक्षेपण-समित्यालोकित-पानभोजनानि पञ्च॥4॥ क्रोध- लोभ-भीरुत्व-हास्य-प्रत्याख्यानान्यनुवीचि-भाषणं च पञ्च॥5॥ शून्यागार- विमो-चितावास-परोपरोधाकरण-भैक्ष्य-शुद्धि-सधर्माविसंवादाः पञ्च॥6॥ स्त्रीराग-कथाश्रवण-तन्मनोहराङ्गनिरीक्षण-पूर्वरतानुस्मरण-वृष्येष्टरस- स्वशरीर-संस्कार-त्यागाः पञ्च॥7॥ मनोज्ञामनोज्ञेन्द्रिय-विषय-राग- द्वेष- वर्जनानि पञ्च॥8॥ हिंसादिष्विहामुत्रापायावद्यदर्शनम्॥9॥ दुःखमेव वा॥10॥ मैत्री-प्रमोद-कारुण्य-माध्यस्थ्यानि च सत्त्वगुणाधिक- क्लिश्यमाना-विनेयेषु॥11॥ जगत्काय-स्वभावौ वा संवेग-वैराग्यार्थम्॥12॥ प्रमत्तयोगात्-प्राण-व्यपरोपणं हिंसा॥13॥ असदभिधानमनृतम्॥14॥ अदत्तादानं स्तेयम्॥15॥ मैथुनमब्रह्म॥16॥ मूर्छा परिग्रहः॥17॥ निःशल्यो व्रती॥18॥ अगार्यनगारश्च॥19॥ अणुव्रतोऽगारी॥20॥ दिग्देशानर्थदण्ड-विरति-सामायिक-प्रोषधोपवासोपभोग-परिभोग-परिमाणातिथि- संविभाग-व्रत- सम्पन्नश्च॥21॥ मारणान्तिकीं सल्लेखनां जोषिता॥22॥ शंका-कांक्षा-विचिकित्सान्यदृष्टि-प्रशंसासंस्तवाः सम्यग्दृष्टेरतीचाराः॥23॥ व्रत-शीलेषु पञ्च पञ्च यथाक्रमम्॥24॥

बन्ध-वध-च्छेदातिभारारोपणान्नपान-निरोधाः॥25॥ मिथ्योपदेश-रहोभ्याख्यान-कूटलेख-क्रियान्यासापहार-साकारमन्त्रभेदाः॥26॥ स्तेनप्रयोग-तदाहृतादान-विरुद्धराज्यातिक्रम-हीनाधिकमानोन्मान-प्रतिरूपकव्यवहाराः ॥27॥ परविवाहकरणेत्वरिका-परिगृहीतापरि-गृहीतागमनानङ्गक्रीडा-कामतीव्राभिनिवेशाः ॥28॥ क्षेत्रवास्तु-हिरण्यसुवर्ण-धनधान्य-दासीदास-कुप्यप्रमाणातिक्रमाः॥29॥ ऊर्ध्वाधस्तिर्यग्व्यतिक्रम-क्षेत्रवृद्धि-स्मृत्यन्तराधानानि ॥30॥ आनयन-प्रेष्यप्रयोग-शब्द-रूपानुपात-पुद्‌गलक्षेपाः॥31॥ कन्दर्प-कौत्कुच्य-मौखर्यासमीक्ष्याधिकरणोपभोग-परिभोगानर्थक्यानि ॥32॥ योगदुष्प्रणिधानानादर-स्मृत्यनुपस्थानानि॥33॥ अप्रत्यवेक्षिता प्रमार्जितोत्सर्गादान- संस्तरोपक्रमणानादरस्मृत्यनुपस्थानानि ॥34॥ सचित्त-सम्बन्ध- संमिश्राभिषव-दुःपक्वाहाराः॥35॥ सचित्तनिक्षेपापिधान-पर-व्यपदेश- मात्सर्य-कालातिक्रमाः॥36॥ जीवित-मरणाशंसा- मित्रानुराग-सुखानुबन्ध- निदानानि॥37॥ अनुग्रहार्थं स्वस्यातिसर्गो दानम्॥38॥ विधि-द्रव्य-दातृ-पात्र विशेषात् तद् विशेषः॥39॥

इति तत्त्वार्थसूत्रे मोक्षशास्त्रे सप्तमोऽध्यायः।

## अष्टम अध्याय

मिथ्यादर्शनाविरति-प्रमाद-कषाय-योगा बन्धहेतवः॥1॥ स कषायत्वाज्जीवः कर्मणो योग्यान् पुद्‌गलानादत्ते स बन्धः॥2॥ प्रकृति-स्थित्यनुभाग-प्रदेशास्तद्‌विधयः॥3॥ आद्यो ज्ञान-दर्शनावरण- वेदनीय-

मोहनीयायुर्नाम-गोत्रान्तरायाः॥4॥ पञ्च-नव-द्व्यष्टाविंशति- चतुर्द्वि-चत्वारिंशद्-द्वि-पञ्च-भेदा यथाक्रमम्॥5॥ मति-श्रुतावधि-मनःपर्यय-केवलानाम्॥6॥ चक्षुरचक्षुरवधि-केवलानां निद्रा-निद्रानिद्रा-प्रचला-प्रचला-प्रचला-स्त्यानगृद्धयश्च॥7॥ सदसद्वेद्ये॥8॥ दर्शन-चारित्र-मोहनीया-कषाय-कषायवेदनीयाख्यास्त्रि-द्वि-नव-षोडशभेदाः सम्यक्त्वमिथ्यात्व-तदुभयान्यकषायकषायौ हास्य-रत्यरति-शोक-भय-जुगुप्सास्त्री-पुन्नपुंसक-वेदा अनन्तानुबन्ध्यप्रत्याख्यान-प्रत्याख्यान-संज्वलन-विकल्पा-श्चैकशः क्रोध-मान-माया-लोभाः॥9॥ नारक-तैर्यग्योन- मानुष-दैवानि ॥10॥ गति-जाति-शरीराङ्गोपाङ्ग-निर्माण-बन्धन-संघात-संस्थान-संहनन-स्पर्श-रस-गन्ध-वर्णानुपूर्व्या-गुरु-लघूपघात- परघाता-तपोद्योतोच्छ्वास- विहायोगतयः प्रत्येकशरीर-त्रस- सुभग-सुस्वर-शुभ-सूक्ष्म-पर्याप्ति- स्थिरादेय-यशः कीर्ति-सेतराणि तीर्थकरत्वं च॥11॥ उच्चैर्नीचैश्च॥12॥ दान-लाभ-भोगोपभोग- वीर्याणाम्॥13॥ आदित-स्तिसृणा-मन्तरायस्य च त्रिंशत्सागरोपम- कोटीकोट्यः परा स्थितिः॥14॥ सप्तति-र्मोहनीयस्य॥15॥ विंशतिर्नाम-गोत्रयोः॥16॥ त्रयस्त्रिंशत् सागरोपमाण्यायुषः॥17॥ अपरा द्वादश-मुहूर्ता वेदनीयस्य॥18॥ नामगोत्रयो- रष्टौ॥19॥ शेषाणा-मन्त-र्मुहूर्ता॥20॥ विपाकोऽनुभवः॥21॥ स यथानाम॥22॥ ततश्च निर्जरा॥23॥ नाम-प्रत्ययाः सर्वतो योग-विशेषात् सूक्ष्मैकक्षेत्रावगाहस्थिताः सर्वात्मप्रदेशेष्वनन्तानन्त-प्रदेशाः॥24॥ सद्वेद्य-शुभायुर्नाम-गोत्राणि पुण्यम्॥25॥ अतोऽन्यत्पापम्॥26॥

इति तत्त्वार्थसूत्रे मोक्षशास्त्रेऽष्टमोऽध्यायः।

## नवम अध्याय

आस्रव-निरोधः संवरः॥1॥ स गुप्ति-समिति-धर्मानुप्रेक्षा-परीषहजय-चारित्रैः॥2॥ तपसा निर्जरा च॥3॥ सम्यग्योग-निग्रहो गुप्तिः॥4॥ ईर्या-भाषैषणादाननिक्षेपोत्सर्गाः समितयः॥5॥ उत्तमक्षमा-मार्दवार्जव- शौच-सत्य-संयम-तप-स्त्यागाकिञ्चन्यब्रह्मचर्याणि धर्मः॥6॥ अनित्याशरण-संसारैकत्वान्यत्वाशुच्यास्रव-संवर-निर्जरा-लोक-बोधिदुर्लभधर्मस्वाख्या-तत्त्वानुचिन्तनमनुप्रेक्षाः॥7॥ मार्गाच्यवननिर्जरार्थं परिषोढव्याः परीषहाः॥8॥ क्षुत्पिपासा-शीतोष्णदंशमशक नाग्न्यारति-स्त्री-चर्या-निषद्या-शय्याक्रोश-वध- याचनालाभ-रोग-तृणस्पर्श-मल-सत्कार-पुरस्कार- प्रज्ञाज्ञानादर्शनानि॥9॥ सूक्ष्मसाम्पराय-छद्मस्थवीतराग-योश्चतुर्दश॥10॥ एकादश जिने॥11॥ बादरसाम्पराये सर्वे॥12॥ ज्ञानावरणे प्रज्ञाज्ञाने॥13॥ दर्शनमोहान्तराययो- रदर्शनालाभौ॥14॥ चारित्रमोहे नाग्न्यारति-स्त्री-निषद्याक्रोश-याचना- सत्कार-पुरस्काराः॥15॥ वेदनीये शेषाः॥16॥ एकादयो भाज्या युगपदेकस्मिन्नै-कोनविंशतेः॥17॥ सामायिक- छेदोपस्थापना- परिहारविशुद्धि-सूक्ष्मसाम्पराय-यथाख्यातमिति चारित्रम्॥18॥ अनशनावमौदर्य- वृत्तिपरिसंख्यान-रसपरित्याग-विविक्तशय्यासन- कायक्लेशा बाह्यं तपः॥19॥ प्रायश्चित्त-विनय-वैयावृत्त्य-स्वाध्याय- व्युत्सर्ग- ध्याना- न्युत्तरम्॥20॥ नव-चतुर्दश-पञ्च-द्वि-भेदा यथाक्रमं प्राग्ध्यानात्॥21॥ आलोचना- प्रतिक्रमण-तदुभय-विवेक-व्युत्सर्ग- तपश्छेदपरिहारोपस्थापनाः॥22॥ ज्ञान-दर्शन-चारित्रोपचाराः॥23॥ आचार्योपाध्याय- तपस्वि-शैक्ष-ग्लान-गण-कुल-सङ्घ-साधुमनोज्ञानाम्॥24॥ वाचनापृच्छनानुप्रेक्षाम्नाय धर्मोपदेशाः॥25॥

बाह्याभ्यन्तरोपध्योः॥26॥ उत्तम- संहननस्यैकाग्रचिन्ता-निरोधो ध्यानमान्तर्मुहूर्तात्॥27॥ आर्त्त-रौद्र- धर्म्य-शुक्लानि॥28॥ परे मोक्षहेतू॥29॥ आर्त्तममनोज्ञस्य सम्प्रयोगे तद्विप्रयोगाय स्मृति-समन्वाहारः॥30॥ विपरीतं मनोज्ञस्य॥31॥ वेदनायाश्च॥32॥ निदानं च॥33॥ तदविरत-देशविरत- प्रमत्त- संयतानाम्॥34॥ हिंसानृत-स्तेय-विषयसंरक्षणेभ्यो रौद्रमविरत- देशविरतयोः॥35॥ आज्ञापाय-विपाक-संस्थान-विचयाय धर्म्यम्॥36॥ शुक्ले चाद्ये पूर्वविदः॥37॥ परे केवलिनः॥38॥ पृथक्त्वैकत्ववितर्क- सूक्ष्मक्रिया-प्रतिपाति-व्युपरतक्रियानिवर्तीनि॥39॥ त्र्येकयोग- काययोगायोगानाम् ॥40॥ एकाश्रये सवितर्क-वीचारे पूर्वे॥41॥ अवीचारं द्वितीयम्॥42॥ वितर्कः श्रुतम्॥43॥ वीचारोऽर्थ-व्यञ्जनयोग- संक्रान्तिः॥44॥ सम्यग्दृष्टि-श्रावक-विरतानन्तवियोजकदर्श-नमोहक्षपकोपशमकोपशान्त-मोहक्षपक-क्षीणमोह-जिनाः क्रमशोऽ-संख्येयगुण-निर्जराः॥45॥ पुलाक-वकुश- कुशीलनिर्ग्रन्थस्नातका निर्ग्रन्थाः॥46॥ संयम-श्रुत-प्रतिसेवना-तीर्थ-लिङ्ग-लेश्योपपाद-स्थान-विकल्पतः साध्याः॥47॥

इति तत्त्वार्थसूत्रे मोक्षशास्त्रे नवमोऽध्यायः।

## दशम अध्याय

मोहक्षयाज्ज्ञानदर्शनावरणान्तराय-क्षयाच्च केवलम्॥1॥ बन्ध-हेत्वभाव-निर्जराभ्यां कृत्स्न-कर्म-विप्रमोक्षो मोक्षः ॥2॥ औपशमिकादि-भव्यत्वानां च ॥3॥ अन्यत्रकेवलसम्यक्त्वज्ञान-दर्शन-सिद्धत्वेभ्यः ॥4॥

तदनन्तरमूर्ध्वं गच्छत्यालोकान्तात् ॥5॥ पूर्वप्रयोगादसङ्गत्वाद् बन्धच्छेदात्तथागतिपरिणामाच्च ॥6॥ आविद्ध-कुलाल-चक्रवद्-व्यपगत-लेपालाबुव-देरण्ड-बीजवदग्नि-शिखावच्च ॥7॥ धर्मास्तिकायाभावात्॥8॥ क्षेत्र-काल-गति-लिङ्ग-तीर्थ-चारित्र-प्रत्येकबुद्ध-बोधित-ज्ञानावगाहनान्तर-संख्याल्प-बहुत्वतः साध्याः॥9॥

इति तत्त्वार्थसूत्रे मोक्षशास्त्रे दशमोऽध्यायः।

अक्षरमात्र पदस्वरहीनं, व्यञ्जन-सन्धि-विवर्जित-रेफम्।
साधुभिरत्र मम क्षमितव्यं, को न विमुह्यति शास्त्रसमुद्रे ॥
दशाध्याये परिच्छिन्ने तत्त्वार्थे पठिते सति।
फलं स्यादुपवासस्य भाषितं मुनि पुंगवैः ॥
तत्त्वार्थसूत्रकर्तारं गृद्धपिच्छोपलक्षितम्।
वन्दे गणीन्द्र-सञ्जात-मुमास्वामि-मुनीश्वरम् ॥

कोटीशतं द्वादशचैव कोट्यो, लक्षाण्यशीतिस्त्र्यधिकानि चैव।
पञ्चाशदष्टौ च सहस्रसंख्यामेतत्श्रुतं पञ्चपदं नमामि ॥
अरहंत भासियत्थं, गणहरदेवेहिं गंथियं सव्वं।
पणमामि भत्तिजुत्तो, सुदणाणमहोवयं सिरसा॥

●

## छहढाला

तीन भुवन में सार, वीतराग विज्ञानता।
शिवस्वरूप शिवकार, नमौं त्रियोग सम्हारिकैं ॥

### पहली ढाल

जे त्रिभुवन में जीव अनन्त, सुख चाहैं दुख तैं भयवन्त।
तातैं दुखहारी सुखकारि, कहैं सीख गुरु करुणा धारि ॥1॥

ताहि सुनो भवि मन थिर आन, जो चाहो अपनो कल्यान।
मोह-महामद पियो अनादि, भूलि आपको भरमत वादि ॥2॥

तास भ्रमन की है बहु कथा, पै कछु कहूं कही मुनि जथा।
काल अनन्त निगोद मंझार, वीत्यो एकेन्द्री-तन धार ॥3॥

एक स्वास में अठदश बार, जन्म्यो मर्‌यो भर्‌यो दुख-भार।
निकसि भूमि जल पावक भयो, पवन प्रत्येक वनस्पति थयो ॥4॥

दुर्लभ लहि ज्यों चिन्तामणी, त्यों परजाय लही त्रसतणी।
लट पिपीलि अलि आदि शरीर, धर-धर मर्‌यो सही बहु पीर ॥5॥

कबहूँ पंचेन्द्रिय पशु भयो, मन विन निपट अज्ञानी थयो।
सिंहादिक सैनी ह्वै क्रूर, निबल पशू हति खाये भूर ॥6॥

कबहूँ आप भयो बल-हीन, सबलनि करि खायो अतिदीन।
छेदन-भेदन भूख-पियास, भार-वहन हिम आतप त्रास ॥7॥

वध-बन्धन आदिक दुख घने, कोटि जीभ तैं जात न भने।
अति-संक्लेश-भाव तैं मर्‌यो, घोर श्वभ्र-सागर में पर्‌यो ॥8॥

तहाँ भूमि परसत दुख इस्यो, बीछू सहस डसैं नहिं तिस्यो।
तहाँ राध शोणित-वाहिनी, कृमि-कुल-कलित देह-दाहिनी ॥9॥

सेमर-तरु दल-जुत-असिपत्र, असि ज्यों देह विदारैं तत्र।
मेरु-समान लोह गलि जाय, ऐसी शीत-उष्णता थाय ॥10॥

तिल-तिल करहिं देह के खण्ड, असुर भिड़ावैं दुष्ट प्रचण्ड।
सिन्धु नीर तैं प्यास न जाय, तो पण एक न बूँद लहाय ॥11॥

तीन लोक को नाज जु खाय, मिटै न भूख कणा न लहाय।
ये दुख बहु सागर लौं सहै, कर्म-जोग तैं नर-गति लहै ॥12॥

जननी-उदर वस्यो नव-मास, अंग-सकुचतैं पाई त्रास।
निकसत जे दुख पाये घोर, तिनकौ कहत न आवै ओर ॥13॥

बालपने में ज्ञान न लह्यो, तरुण समय तरुणी-रत रह्यो।
अर्धमृतक सम बूढ़ापनो, कैसे रूप लखै आपनो ॥14॥

कभी अकामनिर्जरा करै, भवनत्रिक में सुर-तन धरै।
विषय-चाह-दावानल दह्यो, मरत विलाप करत दुख सह्यो ॥15॥

जो विमान वासी हू थाय, सम्यक्‌दर्शन बिन दुख पाय।
तहँतैं चय थावर-तन धरै, यों परिवर्तन पूरे करै ॥16॥

## दूसरी ढाल

ऐसै मिथ्यादृग-ज्ञान-चरण, वश भ्रमत भरत दुख जन्म-मरण।
तातैं इन को तजिये सुजान, सुन तिन संक्षेप कहूँ बखान ॥1॥

जीवादि प्रयोजनभूत तत्त्व, सरधै तिन माहिं विपर्ययत्व।
चेतन को है उपयोगरूप, विन मूरति चिन-मूरति अनूप ॥2॥

पुद्‌गल नभ धर्म अधर्म काल, इन तैं न्यारी है जीव-चाल।
ताको न जान विपरीत मान, करि करै देह में निज पिछान ॥3॥

मैं सुखी दुखी मैं रंक राव, मेरो धन गृह गोधन प्रभाव।
मेरे सुत तिय मैं सबल दीन, बेरूप सुभग मूरख प्रवीन ॥4॥

तन उपजत अपनी उपज जान, तन नशत आप को नाश मान।
रागादि प्रगट जे दुःख दैन, तिनही को सेवत गिनत चैन ॥5॥

शुभ-अशुभ बन्ध के फल मंझार, रति अरति करै निज-पद विसार।
आतम-हित-हेतु विराग-ज्ञान, ते लखै आपको कष्ट दान ॥6॥

रोकी न चाह निज शक्ति खोय, शिवरूप निराकुलता न जोय।
याही प्रतीतजुत कछुक ज्ञान, सो दुखदायक अज्ञान जान ॥7॥

इन-जुत विषयनि में जो प्रवृत्त, ताको जानो मिथ्याचरित्त।
यों मिथ्यात्वादि निसर्ग जेह, अब जे गृहीत सुनिये सु तेह ॥8॥

जो कुगुरु कुदेव कुधर्म सेव, पोषैं चिर दर्शनमोह एव।
अन्तर रागादिक धरैं जेह, बाहर धन अम्बरतैं सनेह ॥9॥

धारैं कुलिंग लहि महत-भाव, ते कुगुरु जनम-जल-उपल-नाव।
जे राग-द्वेष-मल करि मलीन, वनिता-गदादि जुत चिन्ह चीन ॥10॥

ते हैं कुदेव तिनकी जु सेव, शठ करत न तिन भव-भ्रमन-छेव।
रागादि-भाव हिंसा समेत, दर्वित त्रस-थावर मरन-खेत ॥11॥

जे क्रिया तिन्हैं जानहु कुधर्म, तिन सरधै जीव लहै अशर्म।
याकौं गृहीत मिथ्यात जान, अब सुन गृहीत जो है अज्ञान ॥12॥

एकान्तवाद दूषित समस्त, विषयादिक-पोषक अप्रशस्त।
रागी-कुमतिन कृत श्रुताभ्यास, सो है कुबोध बहु देन त्रास ॥13॥

जो ख्याति-लाभ पूजादि चाह, धरि करत विविध-विध देहदाह।
आतम-अनात्म के ज्ञान-हीन, जे-जे करनी तन करन-छीन ॥14॥

ते सब मिथ्याचारित्र त्याग, अब आतम के हित-पन्थ लागि।
जग-जाल-भ्रमन को देहु त्यागि, अब 'दौलत' निज आतम सुपागि ॥15॥

## तीसरी ढाल

आतम को हित है सुख, सो सुख, आकुलता बिन कहिए।
आकुलता शिव माहिं न तातैं, शिव-मग लाग्यो चहिए॥
सम्यक्दर्शन-ज्ञान-चरन शिव-मग सो दुविध विचारो।
जो सत्यारथ-रूप सु निश्चय, कारन सो व्यवहारो॥1॥

पर-द्रव्यनि तैं भिन्न आप में, रुचि सम्यक्त भला है।
आप रूप को जानपनो सो, सम्यग्ज्ञान-कला है॥
आप-रूप में लीन रहे थिर, सम्यक्चारित सोई।
अब व्यवहार मोख मग सुनिये, हेतु नियत को होई॥2॥

जीव अजीव तत्त्व अरु आस्रव, बन्ध'रु संवर जानो।
निर्जर मोक्ष कहे जिन तिन को, ज्यौं-को-त्यौं सरधानो॥
है सोई समकित व्यवहारी, अब इन रूप बखानौ।
तिन को सुनि सामान्य-विशेषै, दृढ़ प्रतीत उर आनौ॥3॥

बहिरातम अन्तरआतम परमातम जीव त्रिधा है।
देह जीव को एक गिनै बहिरातम तत्त्व मुधा है॥
उत्तम मध्यम जघन त्रिविध के, अन्तर-आतम ज्ञानी।
दुविध संग बिन शुध-उपयोगी, मुनि उत्तम निज-ध्यानी॥4॥

मध्यम अन्तर आतम हैं जे, देशव्रती अनगारी।
जघन कहे अविरत-समदृष्टी, तीनों शिव-मगचारी॥

सकल निकल परमातम द्वैविध, तिन में घाति निवारी।
श्री अरहन्त सकल परमातम, लोकालोक-निहारी ॥5॥

ज्ञानशरीरी त्रिविध कर्ममल-वर्जित सिद्ध महन्ता।
ते हैं निकल अमल परमातम, भोगें शर्म अनन्ता ॥
बहिरातमता हेय जानि तजि, अन्तर आतम हूजै।
परमातम को ध्याय निरन्तर, ज्यौं निज आनंद पूजै ॥6॥

चेतनता बिन सो अजीव है, पंच भेद ताके हैं।
पुद्गल पंच वरन रस गन्ध दु फरस वसु जाके हैं ॥
जिय-पुद्गल को चलन सहाई, धर्म द्रव्य अनरूपी।
तिष्ठत होय अधर्म सहाई, जिन बिन-मूर्ति निरूपी ॥7॥

सकलद्रव्य को वास जास में, सो आकाश पिछानो।
नियत वर्तना निशि-दिन सो, व्यवहार-काल परिमानो ॥
यों अजीव अब आस्रव सुनिये, मन-वच-काय त्रियोगा।
मिथ्या अविरत अरु कषाय, परमाद-सहित उपयोगा ॥8॥

ये ही आतम के दुख-कारन, तातैं इन को तजिये।
जीव-प्रदेश बंधै विधि सौं सो, बन्धन कबहुँ न सजिये ॥
शम-दम तैं जो कर्म न आवैं, सो संवर आदरिये।
तप-बल तैं विधि-झरन निरजरा, ताहि सदा आचरिये ॥9॥

सकल करमतैं रहित अवस्था, सो शिव थिर सुख-कारी।
इहि विधि जो सरधा तत्त्वन की, सो समकित व्यवहारी ॥

देव जिनेन्द्र गुरु परिग्रह-बिन, धर्म दयाजुत सारो।
येहु मान समकित को कारन, अष्ट अंगजुत धारो ॥10॥

वसु मद टारि निवारि त्रि-शठता, षट अनायतन त्यागो।
शंकादिक वसु दोष विना संवेगादिक चित पागो ॥
अष्ट अंग अरु दोष पचीसौं, अब संक्षेपहु कहिये।
बिन जाने तैं दोष-गुनन को, कैसे तजिये गहिये ॥11॥

जिन-वच में शंका न, धारि वृष, भव-सुख-वांछा भानै।
मुनि-तन मलिन न देख घिनावै, तत्त्व कुतत्त्व पिछानै ॥
निज-गुन अरु पर-औगुन ढांकै, वा जिन-धर्म-बढ़ावै।
कामादिक कर वृष तैं चिगते, निज-पर को सु दृढ़ावै ॥12॥

धर्मी सों गउ-वच्छ-प्रीति-सम, कर जिन-धर्म दिपावै।
इन गुन तैं विपरीत दोष वसु, तिन को सतत खिपावै ॥
पिता भूप वा मातुल नृप जो, होय न तो मद ठानै।
मद न रूप को मद न ज्ञान को, धन बल को मद भानै ॥13॥

तप को मद न मद जु प्रभुता को, करै न सो निज जानै।
मद धारै तौ येहि दोष वसु, समकित को मल ठानै ॥
कुगुरु-कुदेव-कुवृष-सेवक की, नहिं प्रशंस उचरै है।
जिनमुनि जिनश्रुत विन कुगुरादिक, तिन्हैं न नमन करै है ॥14॥

दोषरहित गुनसहित सुधी जे, सम्यकदरश सजै हैं।
चरितमोहवश लेश न संजम, पै सुरनाथ जजे हैं ॥

गेही पै गृह में न रचै ज्यों, जल तैं भिन्न कमल है।
नगर-नारि को प्यार यथा, कादे में हेम अमल है॥15॥

प्रथम नरक बिन षट भू ज्योतिष, वान भवन षंढ नारी।
थावर विकल-त्रय पशु में नहिं, उपजत समकित-धारी॥
तीन लोक तिहुँ काल माहिं नहिं, दर्शन सम सुखकारी।
सकल धरम को मूल यही इस, बिन करनी दुखकारी॥16॥

मोक्ष-महल की परथम सीढ़ी, या बिन ज्ञान चरित्रा।
सम्यकता न लहै सो दर्शन, धारो भव्य पवित्रा॥
'दौल' समझ सुन चेत सयाने, काल वृथा मत खोवै।
यह नर-भव फिर मिलन कठिन है, जो सम्यक् नहिं होवै॥17॥

## चौथी ढाल

सम्यक् श्रद्धा धारि पुनि, सेवहु सम्यग्ज्ञान।
स्व-पर अर्थ बहु धर्मजुत, जो प्रकटावन भान॥

सम्यक्साथै ज्ञान होय पै भिन्न अराधो।
लक्षण श्रद्धा जान दुहू में भेद अबाधो॥
सम्यक् कारण जान ज्ञान कारज है सोई।
युगपत् होतैं हू प्रकाश दीपक तैं होई॥ 1 ॥

तास भेद दो हैं परोक्ष परतछ तिन माहीं।
मति-श्रुत दोय परोक्ष अक्ष-मन तैं उपजाहीं॥

अवधिज्ञान-मनपर्जय दो हैं देश-प्रतच्छा।
द्रव्य-क्षेत्र-परिमान लिये जानैं जिय स्वच्छा॥ 2॥

सकल द्रव्य के गुन अनन्त परजाय अनन्ता।
जानैं एकै काल प्रगट केवलि भगवन्ता॥
ज्ञान समान न आन जगत में सुख को कारन।
इह परमामृत जन्म जरा-मृत-रोग-निवारन॥ 3॥

कोटि जनम तप तपैं ज्ञान विन कर्म झरैं जे।
ज्ञानी के छिन माहिं त्रिगुप्ति तैं सहज टरैं ते॥
मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायो।
पै निज-आतम-ज्ञान विना सुख लेश न पायो॥ 4॥

तातैं जिनवर कथित, तत्त्व अभ्यास करीजै।
संशय-विभ्रम-मोह त्याग आपो लखि लीजै॥
यह मानुष-परजाय सुकुल सुनिवो जिन-वानी।
इह विधि गये न मिलैं सुमणि ज्यों उदधि समानी॥ 5॥

धन समाज गज बाज राज तो काज न आवै।
ज्ञान आप को रूप भये फिर अचल रहावै॥
तास ज्ञान को कारन स्व-पर-विवेक बखान्यो।
कोटि उपाय बनाय भव्य ताको उर आन्यो॥ 6॥

जे पूरब शिव गये जाँय अब आगै जैहैं।
सो सब महिमा ज्ञानतनी मुनिनाथ कहै हैं॥

विषय-चाह-दव-दाह जगत-जन अरनि दझावै।
तासु उपाय न आन ज्ञान-घनघान बुझावै॥ 7॥

पुण्य-पाप-फल माँहि हरष-विलखौ मत भाई।
यह पुद्गल-परजाय उपजि विनसै थिर नाहिं॥
लाख बात की बात यहै निश्चय उर लावो।
तोरि सकल जग-दन्द-फन्द निज-आतम ध्यावो॥ 8॥

सम्यग्ज्ञानी होइ बहुरि दृढ़ चारित लीजै।
एकदेश अरु सकलदेश तसु भेद कहीजै॥
त्रस-हिंसा को त्याग, वृथा थावर न सँघारै।
पर-वधकार कठोर निन्द्य नहिं वयन उचारै॥ 9॥

जल मृतिका बिन और नाहिं कछु गहै अदत्ता।
निज वनिता बिन सकल नारि सौं रहे विरत्ता॥
अपनी शक्ति विचार परिग्रह थोरो राखै।
दश दिशि गमन-प्रमान ठान तसु सीम न नाखै॥ 10॥

ताहू में फिर ग्राम गली गृह बाग बजारा।
गमनागमन प्रमान ठान अन सकल निवारा॥
काहू की धन-हानि किसी जय हार न चिन्तै।
देय न सो उपदेश होय अघ बनिज कृषी तैं॥ 11॥

कर प्रमाद जल भूमि वृक्ष पावक न विराधै।
असि धनु हल हिंसोपकरन नहिं दे जस लाधै॥

राग-दोष-करतार कथा, कबहूँ न सुनीजै।
औरहु अनरथदण्ड हेतु अघ तिन्हें न कीजै॥ 12॥

धर उर समता-भाव सदा सामायिक करिये।
पर्व-चतुष्टय माहिं पाप तजि प्रोषध धरिये॥
भोग और उपभोग नियम करि ममतु निवारै।
मुनि को भोजन देय फेर निज करहि अहारै॥ 13॥

बारह व्रत के अतीचार पन पन न लगावै।
मरन समय संन्यास धारि तसु दोष नसावै॥
यौं श्रावकव्रत पाल स्वर्ग सोलम उपजावै।
तहँ तैं चय नर-जन्म पाय मुनि ह्वै शिव जावै॥ 14॥

## पाँचवीं ढाल

मुनि सकलव्रती बड़भागी, भवभोगन तैं वैरागी।
वैराग्य उपावन माई, चिन्त्यो अनुप्रेक्षा भाई॥ 1॥

इन चिन्तत समसुख जागै, जिमि ज्वलन पवन के लागै।
जब ही जिय आतम जानै, तब ही जिय शिवसुख ठानै॥ 2॥

जोवन गृह गोधन नारी, हय गय जन आज्ञाकारी।
इन्द्रीय भोग छिन थाई, सुरधनु चपला चपलाई॥ 3॥

सुर असुर खगाधिप जेते, मृग ज्यों हरि काल दले ते।
मणि मंत्र तंत्र बहु होई, मरते न बचावै कोई॥ 4॥

चहुँगति दुख जीव भरे हैं, परिवर्तन पंच करै हैं।
सब विधि संसार असारा, यामैं सुख नाहिं लगारा ॥ 5 ॥
शुभ-अशुभ करमफल जेते, भोगै जिय एकहि तेते।
सुत दारा होय न सीरी, सब स्वारथ के हैं भीरी ॥ 6 ॥
जल-पय ज्यौं जिय-तन मेला, पै भिन्न-भिन्न नहिं भेला।
तो प्रगट जुदे धन-धामा, क्यों ह्वै इक मिलि सुत रामा ॥ 7 ॥
पल रुधिर राध-मल-थैली, कीकस बसादितें मैली।
नव द्वार बहै घिनकारी, अस देह करै किम यारी ॥ 8 ॥
जो जोगन की चपलाई, तातैं ह्वै आस्रव भाई।
आस्रव दुखकार घनेरे, बुधिवन्त तिन्हैं निरवेरे ॥ 9 ॥
जिन पुण्य-पाप नहिं कीना, आतम अनुभव चित दीना।
तिन ही विधि आवत रोके, संवर लहि सुख अवलोके ॥ 10 ॥
निज काल पाय विधि झरना, तासौं निज-काज न सरना।
तप करि जो कर्म खपावै, सोई शिव-सुख दरसावै ॥ 11 ॥
किनहूँ न कर्‌यो न धरै को, षट-द्रव्यमयी न हरै को।
सो लोक माहिं बिन समता, दुख सहै जीव नित भ्रमता ॥ 12 ॥
अन्तिम ग्रीवक लौं की हद, पायो अनन्त बिरियाँ पद।
पर सम्यक्ज्ञान न लाध्यो, दुर्लभ निज में मुनि साध्यो ॥ 13 ॥
जे भाव मोह तैं न्यारे, दृग ज्ञान व्रतादिक सारे।
सो धर्म जबै जिय धारै, तब ही सुख अचल निहारै ॥ 14 ॥

सो धर्म मुनिन करि धरिये, तिनकी करतूति उचरिये।
ताको सुनिये भवि प्रानी, अपनी अनुभूति पिछानी ॥ 15 ॥

## छठी ढाल

षट्काय जीव न हनन तैं सबविधि दरब हिंसा टरी।
रागादि भाव निवारि तैं हिंसा न भावित अवतरी॥
जिन के न लेश मृषा न जल तृण हू विना दीयो गहैं।
अठदश-सहस विधि शीलधर चिदब्रह्म में नित रमि रहैं ॥ 1 ॥

अन्तर चतुर्दश भेद बाहिर संग दशधा तैं टलैं।
परमाद तजि चउ कर मही लखि समिति ईर्या तैं चलैं॥
जग सुहित-कर सब अहित-हर श्रुति-सुखद सब संशय हरैं।
भ्रम-रोग-हर जिनके वचन मुख-चन्द्र तैं अमृत झरैं ॥ 2 ॥

छयालीस दोष विना सुकुल श्रावक तणे घर अशन को।
लें तप बढ़ावन हेत नहिं तन पोषते तजि रसन को॥
शुचिज्ञान संजम उपकरन लखिकैं गहैं लखिकैं धरैं।
निर्जन्तु थान विलोकि तन-मल मूत्र श्लेषम परिहरैं ॥ 3 ॥

सम्यक् प्रकार निरोधि मन-वच-काय आतम ध्यावते।
तिन सुथिर मुद्रा देखि मृग-गन उपल खाज खुजावते॥

रस रूप गन्ध तथा फरस अरु शब्द शुभ असुहावने।
तिन में न राग विरोध पंचेन्द्रिय-जयन पद पावने ॥ 4 ॥

समता सम्हारैं थुति उचारैं वन्दना जिनदेव को।
नित करैं श्रुत-रति धरैं प्रतिक्रम तजैं तन अहमेव को ॥
जिनके न न्हौन न दन्त-धोवन लेश अम्बर आवरन।
भू माहिं पिछली रयनि में कछु शयन एकाशन करन ॥ 5 ॥

इक बार दिन में लें अहार खड़े अलप निज पान में।
कचलोंच करत न डरत परिषह सौं लगे निज ध्यान में ॥
अरि-मित्र महल-मसान कंचन-काच निन्दन-थुतिकरन।
अर्घावतारन असि-प्रहारन में सदा समता धरन ॥ 6 ॥

तप तपैं द्वादश, धरैं बृष दश, रतन-त्रय सेवैं सदा।
मुनि-साथ में वा एक विचरैं चहैं नहि भव-सुख कदा ॥
यों है सकलसंजम चरित, सुनिये स्वरूपाचरन अब।
जिस होत प्रगटै आपनी निधि मिटै पर की प्रवृत्ति सब ॥ 7 ॥

जिन परम पैनी सुबुधि-छैनी डारि अन्तर भेदिया।
वरणादि अरु रागादि तैं निज-भाव को न्यारा किया ॥
निज माहिं निज के हेतु निज कर आप को आपै गह्यो।
गुण गुणी ज्ञाता ज्ञान ज्ञेय मंझार कछु भेद न रह्यो ॥ 8 ॥

जहँ ध्यान ध्याता ध्येय को न विकल्प वच भेद न जहाँ।
चिद्भाव कर्म चिदेश करता चेतना किरिया तहाँ ॥

तीनों अभिन्न अखिन्न शुध उपयोग की निश्चल दशा।
प्रगटी जहाँ दृग-ज्ञान-व्रत ये तीनधा एकै लशा॥ 9॥

परमान नय निक्षेप को न उद्योत अनुभव में दिखै।
दृग-ज्ञान-सुख-बलमय सदा नहिं आन भाव जु मो विखै॥
मैं साध्य साधक मैं अबाधक कर्म अरु तसु फलनि तैं।
चितपिंड चण्ड अखण्ड सुगुन-करण्ड च्युत पुनि कलनि तैं॥ 10॥

यों चिन्त्य निज में थिर भये तिन अकथ जो आनंद लह्यो।
सो इन्द्र नाग नरेन्द्र वा अहमिन्द्र कै नाहीं कह्यो॥
तब ही शुकलध्यानाग्नि कर चउ-घातिविधि-कानन दह्यो।
सब लख्यो केवलज्ञान करि भवि-लोक को शिव-मग कह्यो॥ 11॥

पुनि घाति शेष अघातिविधि छिन माहिं अष्टम-भू-बसैं।
वसु-कर्म विनशै सुगुन वसु सम्यक्त्व आदिक सब लसैं॥
संसार खार अपार पारावार तिर तीरहिं गये।
अविकार अकल अरूप शुध चिद्रूप अविनाशी भये॥ 12॥

निज माहिं लोक अलोक गुन परजाय प्रतिबिम्बित थये।
रहि हैं अनन्तानन्त काल यथा तथा शिव परनये॥
धनि धन्य हैं वे जीव नर-भव पाय यह कारज किया।
तिन ही अनादि भ्रमन पंच प्रकार तजि वर सुख लिया॥ 13॥

मुख्योपचार दुभेद यों, बड़भागि रत्नत्रय धरैं।
अरु धरैंगे ते शिव लहैं, तिन सुजस-जल-जग-मल हरैं॥

इमि जानि, आलस हानि, साहस ठानि, यह सिख आदरो।
जब लौं न रोग जरा गहै तब लौं झटिति निज हित करो ॥ 14 ॥

यह राग आग दहै सदा, तातैं समामृत सेइये।
चिर भजे विषय कषाय अब तौ, त्याग निजपद बेइये ॥
कहा रच्यो पर-पद में न तेरो, पद यहै क्यों दुख सहै।
अब 'दौल' होउ सुखी स्व-पद रचि, दाव मत चूको यहै ॥ 15 ॥

दोहा

इक नव वसु इक वर्ष की, तीज शुकल बैशाख।
कर्‌यो तत्त्व उपदेश यह, लखि 'बुधजन' की भाख ॥ 1 ॥

लघु-धी तथा प्रमाद तैं, शब्द-अर्थ की भूल।
सुधी सुधार पढ़ो सदा, जो पावो भव-कूल ॥ 2 ॥

●

## गुरु वंदना

वन्दौं दिगम्बर गुरु-चरन, जग-तरन-तारन जान;
जे भरम-भारी रोग को है, राजवैद्य महान।
जिनके अनुग्रह बिन कभी, नहिं कटै कर्म-जंजीर;
ते साधु मेरे उर बसहु, मम हरहु पातक पीर ॥1॥

यह तन अपावन अथिर है, संसार सकल असार,
ये भोग विष-पकवान से, इह भांति सोच-विचार।
तप विरचि श्री मुनि वन बसे, सब छांडि परिग्रह भीर;
ते साधु मेरे उर बसहु, मम हरहु पातक पीर ॥2॥

जे कांच-कंचन सम गिनहिं, अरि-मित्र एक सरूप;
निन्दा-बड़ाई सारिखी, वन-खण्ड शहर अनूप।
सुख-दुःख जीवन मरन में, नहिं खुशी, नहिं दिलगीर;
ते साधु मेरे उर बसहु, मम हरहु पातक पीर ॥3॥

जे बाह्य परवत वन गिरि-गुफा-महल मनोग,
सिल-सेज समता-सहचरी, शशि-किरन-दीपक जोग।
मृग मित्र, भोजन तप-मई, विज्ञान-निरमल नीर;
ते साधु मेरे उर बसहु, मम हरहु पातक पीर ॥4॥

सूखहिं सरोवर जल भरे, सूखहिं तरङ्गिनि तोय,
बाटहिं बटोही न चलै, जहँ घाम-गरमी होय।
तिहँकाल मुनिवर तप तपहिं, गिरि-शिखर ठाड़े धीर;
ते साधु मेरे उर बसहु, मम हरहु पातक पीर ॥5॥

घनघोर गरजहि घन-घटा, जल परहि पावस-काल;
चहुँ ओर चमकहिं बीजुरी, अति चलै सीरी ब्याल।
तरु-हेठ तिष्ठहिं तब जती, एकांत अचल शरीर;
ते साधु मेरे उर बसहु, मम हरहु पातक पीर ॥6॥

जब शीत मास तुषारसों, दाहै सकल बन-राय;
जब जमैं पानी पोखरां, थरहरै सबकी काय।
तब नगन निवसैं चौहटैं, अथवा नदीके तीर;
ते साधु मेरे उर बसहु, मम हरहु पातक पीर ॥7॥

कर जोर 'भूधर' बीनवै, कब मिलहिं वे मुनिराज;
यह आश मन की कब कलै, मम सरहिं सगरे काज।
संसार-विषम-विदेश में, जे बिना कारण वीर;
ते साधु मेरे उर बसहु, मम हरहु पातक पीर ॥8॥

●

## समाधि भावना

दिन रात मेरे स्वामी, ये भावना मैं भाऊँ।
देहांत के समय में, तुमको न भूल जाऊँ॥

शत्रु अगर कोई हों, संतुष्ट उनको कर दूँ।
समता का भाव धर कर, सब से क्षमा कराऊँ॥

त्यागूँ आहार पानी, औषध विचार अवसर।
टूटे नियम न कोई, दृढ़ता हृदय में लाऊँ॥

जागें नहीं कषायें, नहिं वेदना सतावे।
तुमसे ही लौ लगी हो, दुर्ध्यान को भगाऊँ॥

आतम स्वरूप अथवा, आराधना विचारूँ।
अरहंत सिद्ध साधू, रटना यही लगाऊँ॥

धर्मात्मा निकट हों, चरचा धर्म सुनावें।
वे सावधान रक्खें, गाफिल न होने पाऊँ॥

जीने की हो न वांछा, मरने की हो न इच्छा।
परिवार मित्र जन से, मैं मोह को हटाऊँ॥

भोगे जो भोग पहले, उनका न होवे सुमरन।
मैं राज्य सम्पदा या, पद इन्द्र का न चाहूँ॥

रत्नत्रय का पालन, हो अंत में समाधि।
'शिवराम' प्रार्थना यह, जीवन सफल बनाऊँ॥

●

# जिनवाणी-स्तुति

1. वीर-हिमाचलतैं निकसी, गुरु गौतम के मुख-कुण्ड ढरी है।
मोह-महाचल भेद चली, जग की जडतातप दूर करी है॥
ज्ञान-पयोनिधि माहिं रली, बहुभंग-तरंगनि सों उछरी है।
ता शुचि शारद गंगनदी प्रति, मैं अंजुलि कर शीश धरी है॥

या जग-मन्दिर में अनिवार, अज्ञान-अँधेर छयो अति भारी।
श्रीजिन की धुनि दीपशिखा-सम, जो नहिं होत प्रकाशन-हारी॥
तो किस भाँति पदारथ-पाँति, कहा लहते रहते अविचारी।
या विधि सन्त कहैं, धनि हैं, धनि हैं जिन-वैन बड़े उपकारी॥

2. मिथ्यातम नासवे को, ज्ञान के प्रकाशवे को।
आपा पर भासवे को, भानु सी बखानी है॥
छहौं द्रव्य जानवे को, बन्ध-विधि भ्रानवे को।
स्व पर पिछानवे को, परम प्रमानी है॥
अनुभव बतायवे को, जीव के जतायवे को।
काहू न सतायवे को, भव्य उर आनी है॥
जहाँ-तहाँ तारवे को, पार के उतारवे को।
सुख विस्तारवे को, येही जिनवाणी है॥
हे जिनवाणी भारती, तोहि जपों दिन रैन।
जो तेरी शरण गहै, सो पावे सुख चैन॥
जा वाणी के ज्ञान तै, सूझे लोकालोक।
सो वाणी मस्तक चढ़ो, सदा देत हों धोक॥

•

## पंच-परमेष्ठी की आरती

इह विधि मंगल आरति कीजे, पंच परम पद भज सुख लीजे।

पहली आरति श्रीजिनराजा, भव-दधि-पार-उतार-जिहाजा।
इह विधि मंगल आरति कीजै, पंच परम पद भज सुख लीजै॥

दूसरि आरति सिद्धन केरी, सुमरन करत मिटै भव-फेरी।
इह विधि मंगल आरति कीजे, पंच परम पद भज सुख लीजे॥

तीजी आरति सुर मुनिन्दा, जनम-मरन दुख दूर करिन्दा।
इह विधि मंगल आरति कीजे, पंच परम पद भज सुख लीजै॥

चौथी आरति श्रीउवझाया, दर्शन देखत पाप पलाया।
इह विधि मंगल आरति कीजै, पंच परम पद भज सुख लीजै॥

पाँचवीं आरति साधु तिहारी, कुमति-विनाशन शिव-अधिकारी।
इह विधि मंगल आरति कीजै, पंच परम पद भज सुख लीजे॥

छट्ठी ग्यारह प्रतिमाधारी, श्रावक वन्दौं आनन्द-कारी।
इह विधि मंगल आरति कीजै, पंच परम पद भज सुख लीजै॥

सातवीं आरति श्रीजिनवानी, 'द्यानत' सुरग-मुकति-सुखदानी।
इह विधि मंगल आरति कीजै, पंच परम पद भज सुख लीजे॥

●

# आरती श्री वर्द्धमानजी की

करो आरती वर्द्धमान की, पावापुर निरवान थान की ॥ टेक ॥
राग-बिना सब जगजन तारे, द्वेष बिना सब कर्म विदारे ॥
करों आरती वर्द्धमान की, पावापुर निरवान थान की।
शीलधुरंधर शिवतिय भोगी, मनवचकाय न कहिये योगी ॥
करों आरती वर्द्धमान की, पावापुर निरवान थान की।
रत्नत्रय निधि परिग्रह-हारी, ज्ञान सुधा भोजन व्रत धारी ॥
करों आरती वर्द्धमान की, पावापुर निरवान थान की।
लोक अलोकव्यापै निजमांहीसुखमय इन्द्रिय सुखदुख नाहिं ॥
करो आरती वर्द्धमान की, पावापुर निरवान थान की।
पंचकल्याणकपूज्य विरागी, विमल दिगम्बर अम्बर त्यागी ॥
करों आरती वर्द्धमान की, पावापुर निरवान थान की।
गुनमनि-भूषण भूषित स्वामी, जगत उदास जगन्तर स्वामी ॥
करों आरती वर्द्धमान की, पावापुर निरवान थान की।
कहै कहाँ लौ तुम सब जानौ, 'द्यानत' की अभिलाष प्रमानौ।
करों आरती वर्द्धमान की, पावापुर निरवान थान की ॥

•

# स्वयंभू स्तोत्र भाषा

राजविषै जुगलनि सुख कियो, राजत्याग भवि शिवपद लियो।
स्वयंबोध स्वयंभू भगवान, वन्दौं आदिनाथ गुणखान ॥

इन्द्र क्षीरसागर जल लाय, मेरु न्हवाये गाय बजाय।
मदनविनाशक सुखकरतार, वन्दौं अजित अजित पदकार ॥

शुक्लध्यान करि करम विनाशि, घाति अघाति सकलदुखरशि।
लह्यो मुकतिपद सुख अविकार, वन्दौं संभव भव दुख टार ॥

माता पश्चिम रयनमंझार, सुपने देखे सोलह सार।
भूप पूछि फल सुनि हरषाय, वन्दौं अभिनन्दन मनलाय ॥

सब कुवाद वादी सरदार, जीते स्यादवाद धुनि धार।
जैनधरम परकाशक स्वाम, सुमतिदेवपद करहुँ प्रणाम ॥

गर्भ अगाऊ धनपति आय, करी नगर शोभा अधिकाय।
बरसे रतन पंचदश मास, नमों पदमप्रभ सुख की राश ॥

इन्द्र फणीन्द्र नरेन्द्र त्रिकाल, वानी सुनि सुनि होहिं खुशाल।
द्वादश सभा ज्ञानदातार, नमों सुपारसनाथ निहार ॥

सुगुन छियालिस है तुम माहिं, दोश अठारह कोऊ नाहिं।
मोहमहातम नाशक दीप, नमों चन्द्रप्रभ राख समीप ॥

द्वादश विध तप करम विनाश, तेरह विध चारित्र प्रकाश।
निज अनिच्छ भवि इच्छकदान, वन्दौं पुष्पदन्त मन आन ॥

भविसुखदाय सुरगतैं आय, दशविधि धरम कह्यो जिनराय।
आप समान सबनि सुखि देह, वन्दौं शीतल धर्मसनेह ॥

समता सुधा कोपविष नाश, द्वादशांग बानी परकाश।
चारसंग आनन्द दातार, नमों श्रेयांस जिनेश्वर सार ॥

रत्नत्रय चिरमुकुट विशाल, शोभे कंठ सुगुन मनिमाल।
मुक्तिनार भरता भगवान, वासुपूज्य वन्दौं धर ध्यान ॥

परम समाधि-स्वरूप जिनेश, ज्ञानी ध्यानी हित उपदेश।
कर्मनाशि शिवसुख बिलसन्त, वन्दौं विमलनाथ भगवन्त ॥

अन्तर बाहिर परिग्रह डारि, परम दिगम्बर व्रत को धारि।
सर्वजीवहित-राह दिखाय, नमो अनंत वचन-मनलाय ॥

सात तत्व पंचासतिकाय, नव पदार्थ छह द्रव्य बताय।
लोक अलोक सकलपरकाश, वन्दौं धर्मनाथ अविनाश ॥

पंचम चक्रवर्ति निधिभोग, कामदेव द्वादशम मनोग।
शांतिकरण सोलम जिनराय, शांतिनाथ वन्दौं हरषाय ॥

बहुथुति करे हरष नहिं होय, निंदे दोष गहैं नहिं कोय।
शीलवान परब्रह्मस्वरूप, वन्दौं कुंथुनाथ शिवभूप ॥

द्वादशगण पूजें सुखदाय, थुति वन्दना करें अधिकाय।
जाकी निजथुति कबहुँ न होय, वन्दौं अरजिनवर-पद दोय ॥

परभव रत्नत्रय-अनुराग, इह भव ब्याह समय बैराग।
बाल ब्रह्म-पूरन व्रत धार, वन्दौं मल्लिनाथ जिनसार ॥

बिन उपदेश स्वयं बैराग, थुति लोकांत करै पगलाग।
नमः सिद्ध कहि सब व्रत लेहिं, वन्दौं मुनिसुव्रत व्रत देहिं ॥

श्रावक विद्यावंत निहार, भगति भावसों दियो अहार।
बरसी रतनराशि तत्काल, वन्दौं नमिप्रभु दीनदयाल ॥

सब जीवन की बन्दी छोर, रागद्वेष द्वै बन्धन तोर।
राजुल तज शिवतियसों मिले, नेमिनाथ वन्दौ सुख मिले ॥

दैत्य कियो उपसर्ग अपार, ध्यान देखि आयो फनधार।
गयो कमठ शठ मुखकरश्याम, नमो मेरुसम पारसस्वाम ॥

भवसागरतैं जीव अपार, धरम पोत में धरे निहार।
डूबत काढ़े दया विचार, वर्द्धमान वन्दौ बहुबार ॥

॥ दोहा ॥

चौबीसों पद कमल जुग, वन्दौं मनवचकाय।
'द्यानत' पढ़ै सुने सदा, सो प्रभु क्यों न सहाय ॥